अलग-अलग रास्ते

[तीन अंकों का एक सामाजिक नाटक]

उपेन्द्रनाथ अश्क

नीलाभ प्रकाशन

इलाहाबाद—१

प्रथम संस्करण
१९५४

मूल्य २॥)

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन ५ खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद, १

मुद्रक
लीडर प्रेस, प्रयाग

कुंवर गजराज सिंह जी के लिए

साभार

हिन्दी की नाटक-परम्परा
में
अलग-अलग रास्ते का स्थान

●

गोपाल कृष्ण कौल

हिन्दी-नाटक को वर्तमान विकसित रूप तक पहुँचने के लिए अनेक मंज़िलें तय करनी पड़ी हैं और आज जिस मंज़िल पर वह पहुँच गया है, वहाँ वह स्थिर नहीं है उसमें विकास की अभी अमिट सम्भावनाएँ निहित हैं।

नाटक एक सामाजिक कला है। वह एकान्त एकाकीपन ले कर पनप नहीं सकती। दूसरी ललित कलाएँ एकान्त साधना की सिद्धि हो सकती हैं, किन्तु नाटक तो अनेक के सहयोग से बनता है। वह बिलकुल सामाजिक प्राणी की तरह पलता-पनपता है। व्यष्टि-निष्ठा और निर्जन योग से उसे सफलता नहीं मिल सकती। नाटक का जन्म ही आदिम मनुष्य में सामाजिकता और परस्पर-सहयोग की भावना के उदय के साथ हुआ था। नाटक तो बनता ही तभी है, जब उसके बनाने में नाटककार (लेखक), नट (अभिनेता), रंगमंच, नृत्य,

संगीत और चित्र-कला (पुराने आचार्यों ने नाटक में इन तीनों कलाओं का समन्वय माना है) निर्देशक और अनेक दर्शकों आदि का समुचित योग होता है। इन तत्वों और उपकरणों में से जहाँ भी ज़रा कमी होती है, वहीं नाटक में शिथिलता आ जाती है। उस में इन तमाम तत्त्वों और उपकरणों का ऐसा सन्तुलित योग होना चाहिए, जो नाटक को सुगठित रूप प्रदान कर सके। आज के नाटक में इन तत्त्वों का काफ़ी सन्तुलित योग है, इसीलिए वह पहले की अपेक्षा आज विकसित रूप में है। किन्तु सम्भावनाएँ अभी और हैं और सदा रहेंगी। हिन्दी नाटक का पिछला इतिहास इन तत्त्वों में सन्तुलन और समुचित योग होने के क्रमिक प्रयत्नों की कहानी है।

इस इतिहास का पहला चरण था पद्य में नाटकों की रचना—पूरा का पूरा नाटक तब पद्यबद्ध होता था। यद्यपि भारत के प्राचीन संस्कृत नाटकों में कोई भी नाटक पूरा का पूरा पद्य में नहीं है, जो पद्य में है, उसमें भी पद्य की अपेक्षा गद्य ही अधिक है, किन्तु शायद उन नाटकों की परम्परा उस समय तक क्षीण हो गयी थी। आधुनिक नाटक का पहला रूप नवाब वाजिद अली के दरबारी कवि अमानत का 'इन्द्र सभा' है, जो पद्यबद्ध है। रंगमंच और अभिनय के लोक-रूपों में इस प्रकार के पद्यबद्ध नाटकों को खेलने की परम्परा अब भी शेष है, जैसे नौटंकी और रास।

दूसरा चरण वह है, जब व्यावसायिक रंगमंचों की शुरुआत हुई। तब भी ऐसी पद्य-नाटिकाएँ खेली जाती थीं, किन्तु धीरे-धीरे उनमें पद्य की मात्रा कम होने लगी थी। पारसी-थियेटर के व्यावसायिक रंगमंच पर पहले उर्दू के 'लैला-मजनू', 'गुलबकावली' जैसे नाटक खेले जाते थे, जिनका गद्य अनुप्रास-प्रधान और लच्छेदार होता था। इन नाटकों में अभिनेता प्रायः मुसलमान होते थे, जो हिन्दू ऋषि-मुनियों का भी पार्ट बड़ी ख़ूबी से अदा करते थे। जब इन व्यावसायिक रंगमंचों की

लोकप्रियता हिन्दू, मुसलमान सभी में बढ़ी तो इन पर 'राजा-हरिश्चन्द्र', 'सीता-स्वयम्बर' आदि नाटक खेले जाने लगे, किन्तु उन सब की शैली एक-सी ही थी — वही अनुप्रास-प्रधान, तुकान्त भाषा और बीच-बीच में शेर। उस समय के संवादों को सुन कर आज ऐसा लगे कि स्कूल के लड़के बैतबाज़ी (अन्ताक्षरी प्रतियोगिता) कर रहे हैं। ये दोष राधेश्याम कथावाचक के नाटकों में भी विद्यमान हैं, यद्यपि उनकी भाषा में पहले से काफी सुधार हुआ। साथ ही इन नाटकों में मनोरंजन का विशेष ध्यान रखा जाता था। दो-चार नाच-गाने ज़रूर होते थे। (जैसे कि आजकल के फिल्मों में प्रायः रहते हैं) और प्रत्येक नाटक में कॉमिक ज़रूर होता था। यह बात शायद संस्कृत के नाटकों से ग्रहण की गयी थी, जिनमें प्रायः प्रमुख नायक के साथ एक विदूषक भी विद्यमान रहता था। ऐसे नाटककारों में तालिब, हश्र, शैदा और राधेश्याम कथावाचक के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हें केवल रंगमंचीय नाटककार कहा जा सकता है। इनके नाटकों के अभिनय का एक घिसा-पिटा तरीका बन गया था। वह स्वाभाविक न हो कर अभिनेताओं में आवश्यकता से अधिक 'स्टेज कान्शसनेस' (मंच सतर्कता) का परिचायक था। सभी के संवाद कहने का ढंग एक-सा नाटकीय था। कार्य, स्थान और समय की एकता का बिलकुल ध्यान नहीं रखा जाता था।

दूसरी ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी भाषा में साहित्यिक नाटकों का जो प्रारम्भ किया था, वह अपने विकास के पथ पर आगे बढ़ रहा था। भारतेन्दु के नाटकों में लम्बे स्वगत भाषण और पद्य की अधिकता है। संकलन-त्रय का भी कोई ध्यान नहीं है। किन्तु भारतेन्दु के नाटकों में एक नयी सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण की झलक है। उनमें सुधार की भावना है, मनोरंजन का स्वर प्रमुख नहीं है। उन्होंने अपने नाटकों में सस्ते नाच-गानों को नहीं आने दिया।

साथ ही उनके नाटक-रूपों में आधुनिक एकांकी और प्रहसन के प्रारम्भिक रूप भी मिलते हैं। भारतेन्दु ने उथले और सस्ते मनोरंजन-प्रधान नाटकों के इस व्यावसायिक रूप के विषय में लिखा है :

> "काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटे वालियों की तरह कमर पर हाथ रख कर मटक-मटक कर नाचने और 'पतरी कमर बल खाय' गाने लगा तो डाक्टर थीबो, बाबू प्रमदा दास मित्र प्रभृति विद्वान यह कह कर उठ आये कि अब देखा नहीं जाता, वे लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।"

इस प्रकार भारतेन्दु के युग में ही नाटकों के इस सस्तेपन से भरे असाहित्यिक रूप के विरोध में साहित्यकारों की चेतना सजग हो गयी थी। दूसरी ओर इस व्यावसायिक रंगमंच का ह्रास होने लगा था, क्योंकि लोक-मनोरंजन के लिए फिल्म ने स्थान बना लिया था। इसलिए रंगमंच पर व्यावसायिक नट-प्रधान नाटकीयता के प्रभाव की वजह से साहित्यिक नाटककारों के आने की गुंजायिश कम हो गयी और रंगमंच के बाहर साहित्यिक नाटकों और नाटककारों का युग प्रारम्भ हुआ। प्रसाद-युग से पूर्व हिन्दी में बंगला और अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद प्रारम्भ हो गया था और नयी राष्ट्रीय चेतना तेज़ी से बढ़ रही थी। ऐसी परिस्थितियों में ही प्रसाद का उदय हुआ। जो देशभक्ति का स्वर भारतेन्दु ने साहित्य में पैदा किया था, उसे प्रसाद ने अपने नाटकों में उदात्त और सांस्कृतिक रूप प्रदान किया। इन नाटकों की कथावस्तु ऐतिहासिक और भाषा संस्कृतनिष्ठ और कवित्व-पूर्ण है। वह पात्रों की भाषा न लग कर सब जगह कवि प्रसाद की भाषा मालूम होती है। इनमें पद्यों की उतनी भरमार नहीं, फिर भी

पद-पद पर गीत रखने का मोह प्रसाद को भी था। रंग-संकेत और दृश्य-विधान में रंगमंच की कला की अनुभवहीनता प्रकट होती है। यह भी हो सकता है, कि व्यावसायिक रंगमंच के भोंडेपन की प्रतिक्रिया में प्रसाद को रंगमंच की कला के प्रति ही विरक्ति हो गयी हो। संकलन-त्रय का उनके नाटकों में कहीं ध्यान नहीं रखा गया।

प्रसादोत्तर काल में नाटकों का नया युग शुरू हुआ और इसमें उपरोक्त तमाम कमियों का परिमार्जन करने का प्रयत्न किया गया। रंगमंच को कलात्मक ढंग पर संगठित करने के ऐमेचर प्रयत्न किये गये और दूसरी ओर बोलते फिल्मों के कारण दर्शकों में कम समय में ही अधिक सुगठित नाटक देखने की अभिरुचि जाग्रत हुई। और आज रंगमंच का विकास पृथ्वी थियेटर की मंज़िल पर आ कर आगे के स्वप्न ले रहा है।

राजनीतिक संघर्ष ने नाटकों के वस्तु-तत्त्व में विविधता और वर्त्तमान जीवन की जागरूकता को स्थान दिया। अब नाटक केवल उच्चवर्ग के लिए नहीं, वरन् सर्वसाधारण के लिए लिखे जाने लगे। इतिहास की गुफा से निकल कर नाटक ने वर्त्तमान जीवन से नाता जोड़ा और उसमें यथार्थ जीवन की झांकी प्रस्तुत की जाने लगी।

ध्वनि और विद्युत-यन्त्रों की सहायता से रंगमंच पर दृश्यों की सेटिंग को यथार्थ बनाने का कलात्मक प्रयत्न शुरू हुआ। फिर आज के हिन्दी नाटककार मूलतः साहित्यिक हैं और उनके सम्पर्क व्यापक हैं। उनकी कलात्मक चेतना सामाजिक और राजनीतिक जागरण के साथ-साथ विकासमान हो कर विश्व-साहित्य की समस्याओं की ओर उन्मुख हो रही है।

हिन्दी-नाटक के इस नव-जागरण में नये युग के नाटककारों का महत्त्वपूर्ण योग है। और उनमें अश्क का स्थान विशेष है।

'अलग-अलग रास्ते' अश्क का नया नाटक है। और यह नाटक आधुनिक शैली के नाटकों का सफल उदाहरण ही नहीं, बल्कि हिन्दी-नाटक के विकास की एक महत्त्वपूर्ण मंज़िल भी है। पिछले पृष्ठों में हिन्दी-नाटक के विकास की जो पृष्ठ-भूमि दी गयी है, उसे दृष्टि में रखते हुए यदि इस नाटक को पढ़ा या खेला जाय तो यह हिन्दी में रंगमंच, वस्तु और रूप-विधान के विकास का एक सीमाचिन्ह साबित होगा।

'अश्क' ने पहले एक नाटक 'आदि मार्ग' के नाम से लिखा था। 'अलग-अलग रास्ते' उसका ही परिवर्तित रूप है। 'अश्क' नाटक को बार-बार मांजा-सँवारा करते हैं और इससे उनकी कला में सदा नया निखार आता है। 'आदि-मार्ग' को 'अलग-अलग रास्ते' बनाने में भी उनकी इसी प्रवृत्ति ने काम किया है।

'अलग-अलग रास्ते' पढ़ कर इतिहास की एक पुरानी घटना याद आती है।

एक बार नेपोलियन ने मादाम कण्डोरसेट से कहा—"I do not like women to meddle with politics"*

मादाम ने उत्तर दिया—"You are right General, but in a country where it is a custom to cut off the heads of women, it is natural that they should wish to know the reason why ?"†

---

*अर्थात्, मैं नहीं चाहता कि महिलाएं राजनीति में दस्तन्दाज़ी करें।

† आप ठीक कहते हैं, सेनापति, किन्तु जिस देश में स्त्रियों के सिर

वर्तमान समाज के पारिवारिक जीवन में हर पुरुष, चाहे वह पति हो या पिता, स्त्री के प्रति अपने को नेपोलियन से कम नहीं समझता। जिस व्यवस्था में स्त्री सामाजिक व्यक्ति नहीं बन पाती, केवल परम्परागत पुरुष-निर्मित संस्कारों और आदर्शों के लिए, पुरुष की मात्र आदेश-पालिका ही बनी रहती है, वहाँ यदि पुरुष भी घर के मैदान में अपने को नेपोलियन समझे तो हास्यास्पद होते हुए भी आश्चर्यजनक नहीं है। किन्तु उस मादाम की तरह आज की जाग्रत नारी अपना सिर काटने वालों से केवल जवाब-ही तलब नहीं करती, बल्कि सिर काटने वाली तलवार को भी तोड़ने के प्रयत्न में संघर्ष-रत है।

'अलग-अलग रास्ते' में नारी-जीवन के नव-जागरण का यथार्थ रूप और उसके पुरातन संस्कार दोनों को एक-साथ प्रस्तुत किया गया है। नारी, चाहे पत्नी हो या पुत्री, उसे अभी पुरुष के समान सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिली है और उसका आत्म-संघर्ष ही यह है, कि पारिवारिक-मिथ्या-प्रतिष्ठा को वह सामाजिक-प्रतिष्ठा से कैसे बदले। पुराने संस्कार उसे पैर पकड़ कर पीछे घसीटते हैं और नयी सामाजिक चेतना उसे आगे बढ़ने को आकर्षित करती है। इस द्वन्द्व में आज उसका जीवन बीत रहा है। उसका यह द्वन्द्व पुरुष-सत्ता के प्रति उसके सामाजिक स्वाभिमान के संघर्ष के रूप में बदल जाता है। यदि वह स्वाभिमानी सिर को अपने सामाजिक जीवन के धड़ पर प्रतिष्ठित रखना चाहती है, तो उसे घर के नेपोलियनों की तलवार तोड़नी पड़ेगी, इस नाटक का मूल स्वर यही है।

काटने का रिवाज हो, वहां यदि नारियां इसका कारण जानना चाहें तो स्वाभाविक है।

पं० ताराचन्द की तीन सन्तानें हैं। राज और रानी--दो पुत्रियाँ और पूरन एक पुत्र ! राज और रानी दोनों की शादी हो गयी, किन्तु राज का प्रोफेसर पति एक दूसरी स्त्री से प्रेम करता था, इसलिए राज को छोड़ कर उसने उससे शादी कर ली और रानी का वकील पति ताराचन्द की कोठी और कार दहेज में चाहता था, जिनके न मिलने पर उसने रानी की उपेक्षा की। फलतः दोनों ही अपने पिता के घर हैं। पूरन यथार्थवादी विचारों का जागरूक युवक है। उसका दृष्टिकोण अपने पिता से बिलकुल भिन्न है। पं० ताराचन्द पुराने संस्कारों के कट्टर हिमायती हैं। वे पक्के 'नेपोलियन' हैं। दोनों पुत्रियों की शादी वे अपनी धारणाओं के अनुसार तय कर देते हैं, किन्तु उसका जो फल निकलता है, वह उनके लिए भी एक समस्या बन जाता है। फिर भी वे 'नेपोलियन' बने रहना चाहते हैं।

त्रिलोक, पंडित उदयशंकर और पं० ताराचन्द--तीनों एक संस्कार के प्रतीक हैं। त्रिलोक को ताराचन्द का नवीन संस्करण कहा जा सकता है। अन्तर केवल इतना है, कि एक पति है तो दूसरा पिता, किन्तु दोनों ही रानी के लिए समान हैं।

राज के पति की समस्या सामाजिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी ! वह राज से प्रेम नहीं कर पाता, इसके लिए वह क्या करे ? किन्तु दूसरे के प्रति प्रेम करते हुए भी राज-जैसी पुराने संस्कारों की भोली लड़की से शादी करने को तैयार हो जाना उसकी सामाजिक दायित्वहीनता का परिचायक है।

'अलग-अलग रास्ते' को हम एक ऐसा स्वस्थ समस्या मूलक नाटक कह सकते हैं, जिसमें वर्तमान सामाजिक जीवन की एक समस्या को यथार्थवादी प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। समस्या है विवाह और प्रेम तथा नारी की सामाजिक-प्रतिष्ठा के निर्माण

की। पात्र संस्कारों और नयी चेतना के प्रतीक ही नहीं, बल्कि वे स्वयं में एक वर्ग हैं। जैसे पं० ताराचन्द तथा पं० उदय शंकर ऐसे प्रतीक पात्र हैं, जो समाज के एक वर्ग के अवशिष्ट सामन्ती संस्कारों का प्रतिनिधित्व करते हैं और राज है—नारी के उन पुराने संस्कारों की प्रतीक, जो शील और मर्यादा के नाम पर, प्रेम न करने वाले पति की भी पूजा के लिए, सब कुछ सहते हुए, पतिव्रता बनी रहना चाहती है, जो बन्धनों को शृंगार और अत्याचारों को सहना एक साधना समझती है ! और रानी है उस नारी का प्रतीक, जो आज की बनती हुई नारी है, जो नारी जीवन की सामाजिक सम्भावना है, जो आज विद्रोह के पथ पर चलने को तैयार हो रही है। पूरन सारे पुरातन सड़े-गले समाज की विकृतियों को झकझोरने वाला क्रान्ति के नये स्वर का उद्घोषक है, जो वर्तमान जीवन के सामाजिक असन्तोष का प्रतीक है।

इस परिवार में पूरन से रानी ही सर्वाधिक प्रभावित है और वही लालची और लोभी पति के साथ, पिता के मजबूर करने पर भी, जाने से इनकार कर देती है।

सभी के स्वर अलग हैं। सभी अपने-अपने चरित्र की रेखाओं को स्पष्ट करते हुए अपना स्वाभाविक प्रतिनिधित्व करते हैं।

पं० ताराचन्द रानी से कहते हैं:—

> "तू नहीं जानती, अपने पति के विरुद्ध सपने में भी बुरी बात सोचना कितना बड़ा पाप है ? तू नहीं जानती, तूने एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, तू किसी चांडाल के घर उत्पन्न नहीं हुई।"

रानी ताराचन्द को उत्तर देती है :

"आप के धर्म की बातें मैंने बहुत सुन लीं, पिता जी, आपका धर्म भी पुरुषों का धर्म है।"

और पूरन कहता है :

"इन पिताओं और पतियों में कोई अन्तर नहीं!"

और रानी वह स्वाभिमान और सामाजिक व्यक्तित्व पाने के लिए पति को भी छोड़ती है और पिता को भी। पति द्वारा लोभवश चापलूसी करने पर वह कहती है :

> "आप क्या मुझे मूर्ख समझते हैं? क्या आपका खयाल है कि उस अपमान, निरादर और घोर मानसिक यन्त्रणा के बाद, जो आपने दो बरस मुझे दी, मैं इतनी भोली हूँ, कि आपकी इन झूठी मीठी बातों के भुलावे में आ जाऊँगी?...... आप जाइए...पिता जी से मकान लीजिए, मोटर लीजिए! मुझे उस मकान-मोटर की कोई जरूरत नहीं।"

इसके विपरीत राज अपने पति मदन के दूसरी शादी कर लेने पर भी अपने 'देवता तुल्य ससुर' के यहाँ चलने को तत्पर है। वह कहती है—

"यह तो मेरी किस्मत है, भैया!"

नारी के दो रूप—एक पुराने संस्कारों का और दूसरा नयी सामाजिक चेतना का—राज और रानी में पूरी तरह उभर उठे हैं। अन्त में जहाँ नाटक का क्लाइमेक्स है, रानी और पूरन पुरातन संस्कार के सत्ताधारी पिता के घर को छोड़ कर चल देते हैं और राज उसे पूज्य समझ कर अपना लेती है। यहाँ पर रानी राज से कहती है—

> "आज से हमारे रास्ते अलग होंगे, राजो! मैं प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो।"

पूरन कहता है—

"स्वाभिमानियों के लिए आदिकाल से यह मार्ग खुला है, राजो !"

किन्तु राज के पुराने संस्कार बोलते हैं—
"मेरा मार्ग भी तो आदिम है, भैया।"

इस तरह इन प्रतीक-चरित्रों में वर्तमान सामाजिक जीवन की एक मूल और यथार्थ समस्या को बड़े कलात्मक ढंग से उद्घाटित किया गया है और साथ ही सम्भावना की ओर संकेत करता हुआ एक समाधान भी पेश किया गया है।

बाकी पात्र भी मध्यवर्गीय समाज के अन्तर्विरोध-पूर्ण रूढ़-संस्कारों के ही प्रतीक हैं और समस्या को उजागर करने में किसी-न-किसी तरह अपने स्वाभाविक रूप में सहायक होते हैं। शिवराम, सरदारी लाल बिजली पहलवान—सब वर्तमान समाज के जीवित, जाग्रत अंग हैं।

कला की दृष्टि से यह नाटक अश्क के विकास का एक सीमाचिन्ह प्रस्तुत करता है। इसमें समय, स्थान और कार्य-सम्पादन की एकता का कलात्मक ढंग से निर्वाह किया गया है। सब से बड़ी बात यह है, कि 'अलग-अलग रास्ते' मंच पर बिना किसी अतिरंजना के समाज का ऐसा चित्र साकार कर सकता है कि नाटक के रस का साधारणीकरण सहज ही सम्भव है। एक ही कमरे की सेटिंग में पूरा नाटक समाप्त हो जाता है। तीनों अंकों का दृश्य-स्थान एक ही है और कार्य-व्यापार आरम्भ से फलागम तक ऐसे प्रवाह से बढ़ता है, कि लगता है, जितनी देर नाटक के खेलने में लगती है, उतनी ही देर की कहानी है।

दृश्य-संकेत में लेखक ने कमरे के वातावरण को प्रत्यक्ष करने का सफल प्रयत्न किया है। कमरे में अवतारों के चित्र पुराने संस्कारों

के और मार्क्स और गांधी के चित्र नयी चेतना के प्रतीक हैं। साथ ही ये चित्र आज के संक्रान्ति-कालीन परिवारों के विचार-वैविध्य को भी प्रकट करते हैं।

'अलग-अलग रास्ते' दुखान्तकी ही कहा जा सकता है, किन्तु यह निराशावादी नहीं है, इसलिए पूरी तरह यह दुखान्तकी नहीं है। बल्कि कह सकते हैं, कि दुखान्तकी का यह आधुनिकतम रूप है। पूरन और रानी आशावादी हैं और राज निराशावादी, किन्तु दोनों के अन्तर्मन में एक जैसी विकल वेदना है।

इस नाटक में हास्य की उतनी तरलता नहीं है, जितनी अश्क के दूसरे नाटकों में मिलती है। इसमें कहीं-कहीं पर नाटकीय परिस्थिति से हास्य जागता है, वह भी व्यंग्य मिश्रित या व्यंग्य के कारण। नाटक का दूसरा अंक तीखे व्यंग्य का सुन्दर नमूना है। पूरन के सम्वादों में व्यंग्य है और उस व्यंग्य में पूरे-के-पूरे सड़े-गले समाज पर घन की सी चोट है।

लगता है, कि अश्क के नाटकों की थीम ज्यादातर विवाह और प्रेम की समस्या पर आधारित है और इस नाटक में भी उसकी आवृत्ति की गयी है। किन्तु ऐसे सभी नाटकों में अश्क का दृष्टिकोण विकसित होता गया है, जिसका उद्देश्य एक समस्या के माध्यम से समाज के सभी अंगों पर प्रकाश डालना है। अपने इस नाटक में अश्क ने समस्या को एक निश्चित समाधान की दिशा बता कर अपने उस प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है, जो आज इतिहास का रहनुमा है।

प्रस्तुत लेख अश्क के नाटक-साहित्य पर लिखे गये वृहद ग्रन्थ 'नाटककार अश्क' से संकलित है।



१९५३ में 'नीटा' प्रयाग द्वारा 'अलग अलग रास्ते' का अभिनय !

अलग-अलग रास्ते

अलग-अलग रास्ते पहली बार १९ दिसम्बर १९५३ को नीटा (नार्थ इंडियन थियेट्रीकल एसोसीएशन) द्वारा निम्नलिखित अभिनेताओं के साथ पैलेस थियेटर इलाहाबाद में अभिनीत हुआ ।

पंडित ताराचन्द	विजय बोस
शिवराम	पी० सी० बेनर्जी
रानी	ललिता चटर्जी
पूरन	राज जोशी
सरदारीलाल	एस० एस० पाण्डेय (राजू)
राज	बिन्दु अग्रवाल
सन्तू	टी० सी० गौड़
बृजनाथ	के० बी० लाल
त्रिलोक	कौशल बिहारीलाल
बनवारी	सतीश जौहरी
पं० उदयशंकर	मनोज शर्मा
वृन्दाबन	अब्बास
बिजली पहलवान	वली उल्लाह
श्रीधर	विजय प्रताप

इस नाटक का निर्देशन श्री भारतभूषण अग्रवाल तथा श्री विजय बोस तथा संयोजन श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने किया ।

नोटः—नाटक के अभिनय इत्यादि के सम्बन्ध में लेखक के मनोरंजक संस्मरण परिशिष्ट में देखिए ।

पात्र

(जिस क्रम से कि वे नाटक में आते हैं)

ताराचन्द

शिवराम

रानी

पूरन

सरदारीलाल

राज

सन्तू

बृजनाथ

त्रिलोक

बनवारी

पण्डित उदय शंकर

वृन्दाबन

बिजली पहलवान और उसके साथी

श्रीधर

स्थान

(पंडित ताराचन्द का ड्राइंग रूम)

समय

पहला अंक —इतवार को सुबह

दूसरा अंक —इतवार को दुपहर

तीसरा अंक —इतवार को शाम

पहला अंक

[पर्दा राय साहब पंडित ताराचन्द की बैठक में खुलता है। यह बैठक नये और पुराने का अद्‌भुत मिश्रण उपस्थित करती है, क्योंकि इसमें कौच भी लगे हैं, तिपाइयाँ भी रखी हैं और एक तख्त पर गाव-तकिया भी लगा है।

*बायीं दीवार में एक बड़ी खिड़की है जो सामने की दीवार के कोने तक चली गयी है। तख्त इसी के बराबर, कुछ ऐसे बिछा है कि उस पर लेटने वाले का चेहरा दर्शकों को दिखायी दे जाय। खिड़की पर पर्दा लटक रहा है, शायद पूरा नहीं खींचा गया, क्योंकि खिड़की का आधा भाग दिखायी दे रहा है, जिसके शीशों से बाहर बागीचे के पेड़-पौधे दिखायी देते हैं।

†दायीं दीवार में भी एक वैसी ही खिड़की है, जिसके अध-

*†अभिनेताओं की बायीं-दायीं

खुले पर्दे से चबूतरा और उसके परे बागीचा दिखायी देता है। खिड़की के इधर को एक दरवाज़ा है जो बाहर चबूतरे पर खुलता है। बाग से होकर बैठक में आने का यही दरवाज़ा है।

सामने दीवार के साथ कौच का सेट, तख़्त से आंगन के दरवाज़े तक, इस ढंग से लगा है कि बायीं ओर के कौच पर बैठा हुआ व्यक्ति तख़्त पर बैठे हुए आदमी से बड़ी आसानी से बातचीत कर सकता है।

दीवारों पर अवतारों के चित्र भी लगे हैं और महात्मा गांधी तथा पंडित जवाहरलाल के भी, लेकिन उनमें मार्क्स और लेनिन के चित्र न जाने किसने लगा दिये हैं? शायद पंडित जी के लड़के पूरन ने लगाये हैं और पंडित जी से उसने यह कह दिया है कि ये भी अवतारों ही की तस्वीरें हैं।

सुबह का समय है। खिड़की के शीशों से हलकी-हलकी धूप कमरे में आ रही है। पर्दा उठने पर पंडित ताराचन्द दर्शकों की ओर पीठ किये तख़्त के पीछे खड़े खिड़की की रोशनी में समाचार पत्र पढ़ रहे हैं। बैक-ग्राऊँड में रानी गाना सीख रही है। और सुबह की रागिनी में उस मीठे गाने के रसीले बोल कुछ पल को रंगमंच पर छाये रहते हैं। तभी शिवराम दायीं ओर से प्रवेश करते हैं। ताराचन्द को समाचार-पत्र पढ़ते देखते हैं, फिर टोपी और छड़ी मेज़ पर रखते हैं और नौकर को आवाज़ देते हैं :]

शिवराम : सन्तू, ज़रा पानी का एक गिलास लाना।
(अन्दर गाना थम जाता है। पंडित ताराचन्द मुड़ते हैं।)

ताराचन्द : आओ शिवराम बैठो। (**आकर तख्त पर बैठते हुए रानी को आवाज़ देते हैं**) रानी बेटा, एक गिलास पानी भिजवाओ:.....

(हुक्के की नय थाम कर एक लम्बा कश लेते हैं।)

रानी : (**आंगन से**) ला रही हूँ पिता जी !

(पं० ताराचन्द के निकट ही कौच पर बैठते हुए)

शिवराम : अर भई कोई ऐसी जल्दी नहीं। इतनी दूर से पैदल चला आया, इसलिए कुछ प्यास सी लग रही है, पर ऐसी भी क्या मुसीबत है कि......

[रानी आंगन के दरवाज़े से पानी लिए हुए प्रवेश करती है।]

ताराचन्द : तुम लायी हो, वह सन्तू, शिब्बू कहाँ मर गये ?

रानी : जी सन्तू तरकारी लेने गया है और शिब्बू घर चला गया है। उसकी बीवी सख्त बीमार है।

ताराचन्द : किसने छुट्टी दी उसे।

रानी : पूरन भय्या ने उसे भेज दिया।

ताराचन्द : यह पूरन जो न करे थोड़ा है।

(रानी बढ़ कर गिलास शिवराम को देती है)

रानी : लीजिए चाचा जी !

शिवराम : (**गिलास लेते हुए**) जीती रहो बेटा !

[दो एक घूंट पी कर गिलास तिपाई पर रखते हैं। रानी गिलास उठाने लगती है।]

शिवराम : नहीं, नहीं, अभी गिलास ले जाने की जरूरत नहीं। मैं अभी और पीऊँगा। धीरे-धीरे पीने की आदत है मेरी। **(रानी के कंधे को थपथपाते हुए हँसते हैं)** जल्दी का काम शैतान का होता है और शैतान के कामों को मैं पसन्द नहीं करता।

(रानी गिलास फिर तिपाई पर रखती हुई मुस्कराती है।)

ताराचन्द : **(हुक्के की नय छोड़ कर)** भगवान तुम्हारा भला करे! यहीं हम लोग जवानों को मात दे देते हैं। 'सहज पके सो मीठा हो!' में हमारा विश्वास है, पर आज के नौजवानों में उतना सबर नहीं, कच्चा-खट्टा उन्हें पसन्द, पर पकने की बाट वे नहीं देख सकते।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।)

शिवराम : हम तो भाई बरमे हैं बरमे! जहाँ बैठ जाते हैं आर-पार छेद कर देते हैं। आज के नौजवान कील ले कर ठोंकना शुरू करेंगे और जब लकड़ी फट जायगी तो मुंह बा देंगे!

ताराचन्द : **(नय छोड़ कर अपने आप)** बरमे! **(हँसते हैं।)** भगवान तुम्हारा भला करे, क्या बात कही है तुमने!

(रानी हँसती है।)

— : **(कुछ चिढ़ कर)** तुम गिलास के लिए क्यों खड़ी हो? सन्तू ले जायगा!

(रानी जाती है। ताराचन्द हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।)

शिवराम : क्यों भई, रानी के बारे में क्या फैसला किया तुमने? बेचारी आधी भी नहीं रही।

ताराचन्द : रानी ही के दुख की दवा कर रहा हूँ, शिवराम! अपनी

ओर से मैं इस बात का पूरा ध्यान रखता हूँ, कि उसे किसी तरह का कष्ट न हो। (**हुक्का गुड़गुड़ाते हैं ।**) उसने दो बार कालेज में दाखिल होना चाहा और हालाँकि मैं लड़कियों की शिक्षा को उतना पसन्द नहीं करता, लेकिन पूरन के जोर देने पर और इस बात का खयाल करके कि रानी को अपना दुख हर समय खलेगा, मैंने इनकार नहीं किया। फिर सूरदास हरिराम को उसे गाना सिखाने को भी लगा दिया। (**फिर हुक्के का लम्बा कश लेकर कद्रे भेद-भरे स्वर में**) यही नहीं, मैंने त्रिलोक की तरफ से भी उम्मीद नहीं छोड़ी। वृन्दावन को उसके पीछे लगा रखा है और वह उसे राह पर लाने की पूरी कोशिश कर रहा है। (**फिर हुक्का गुड़गुड़ाते और खाँसते हैं ।**) मैं जानता हूँ, अपनी सारी शिक्षा-दीक्षा, कला-कौशल और अपने सारे गुणों के रहते भी रानी विरह के इस लम्बे दुख को न सह सकेगी।

(**हुक्के का लम्बा कश लेते हैं ।**)

शिवराम : धन चोरी हो जाय, खो जाय, ताराचन्द, आदमी सन्तोष कर लेता है, पर पास होते हुए भी, अपना होते हुए भी, उसे हाथ लगाने की आज्ञा न हो, इस बात से जो कष्ट होता है , उसे मन ही जानता है।

ताराचन्द : (**नय छोड़ कर**) भगवान तुम्हारा भला करे ! (**फिर हुक्के का लम्बा कश लेते हैं ।**) इसलिए मैं इस जतन में हूँ कि त्रिलोक स्वयं आ कर उसे ले जाय और मान से रखे।

शिवराम : क्या कहता है त्रिलोक ?

ताराचन्द : अभी तो कोई सुन-गुन ही नहीं देता। बात असल में कुछ बिगड़ गयी है शिवराम, उसे बनाने के लिए समझदारी और समय दोनों की ज़रूरत है। बरमा ही चाहिए, जो धीरे-धीरे, लेकिन स्थिर गति से, उसके दिमाग में छेद करके उसे यह समझा दे कि जो तरीका उन लोगों ने अपनाया है, वह ठीक नहीं। मैं रानो को घर बैठाना नहीं चाहता, पर उसे और उसके साथ अपने वंश को चौबीसों घड़ी अपमानित होते भी नहीं देख सकता।

शिवराम : अपमानित, लेकिन......

ताराचन्द : बात यह है शिवराम, कि इस शादी से त्रिलोक को, त्रिलोक ही को नहीं, राय बहादुर पंडित कुंजबिहारी को भी बड़ी आशाएँ थीं।

शिवराम : आशाएँ ?

ताराचन्द : उन्हें आशा थी कि मैं दहेज़ में अपना कचहरी रोड वाला मकान और मोटर ज़रूर दूंगा। लेकिन मकान छोड़ जब उन्हें मोटर भी न मिली......

[पूरन बाहर चबूतरे पर दिखायी देता है। क्षण भर के लिए खिड़की में से भीतर झाँकता है, फिर ड्राइंग रूम की ओर आता है।]

शिवराम : लेकिन उन्हें मकान और मोटर की क्या ज़रूरत है ? उनके अपना मकान है, और मोटर भी है।

ताराचन्द : अरे भई, जितना बड़ा पेट उतनी बड़ी भूख ! और फिर त्रिलोक के अलावा राय बहादुर के पाँच और बेटे

भी तो हैं। बाँटने पर शायद किसी मकान की बैठक और मोटर का कोई पुर्ज़ा ही उसके हाथ लगे।

[पूरन कमरे में आता है, लेकिन दोनों को बातों म निमग्न देख पल भर के लिए चौखट में खड़ा सुनता है ।]

शिवराम : क्या कहते हो, उनके तो इतने मकान हैं !

ताराचन्द : सब गिरवी रखे हुए हैं। मुझे तो पता ही न चला, नहीं मैं कभी रानी की शादी वहाँ न करता।

पूरन : (**हँसता है**) इस बात का पता चल जाता तो कोई और बात पर्दे में रह जाती। व्याह तो आज-कल अंधेरे म तीर मारने के बराबर है। निशाने पर लग गया तो ठीक, नहीं हाथ से निकला तीर तो वापस आता नहीं। जब दोनों पक्ष झूठ बोलने में एक दूसरे से बाज़ी मारने की फ़िक्र में हों तो सच का पता पाना मुश्किल है।

ताराचन्द : (**हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़ कर तीक्ष्ण-कटु-स्वर में**) कहाँ से आये हो, पूरन, आवारागर्दी करके ?

पूरन : आवारागर्दी में ठौर-ठिकाना कहाँ ? सभी जगह घूमता आया हूँ।

ताराचन्द : तुम्हें कभी तमीज़ से बात करनी भी आयेगी ? (**शिवराम से**) और शिवराम, तुम कहते थे, बच्चों को जितना हो सके पढ़ाना चाहिए। ये महाशय एम० ए० हैं और सुनता हूँ, अपनी जमात में अव्वल रहे थे। पूछो, क्या करते हैं ? (**मुंह बना कर**) आवारागर्दी !

पूरन : तो आखिर आप ही कहें, क्या करूँ ?

ताराचन्द : (**गरज कर**) मैं कहूँ ? मेरे कहने से क्या होता है ?

(**शिवराम से**) मैं इसके लिए कितने मित्रों के सामने बुरा नहीं बना शिवराम ! रायसाहब गनीमत राय की सिफारिश से आल-इंडिया रेडियो में पी० ई० बनवा दिया (**नकल उतारते हुए**) "मुझे यह क्लर्की पसन्द नहीं !" बुरा सा मुंह बना कर यह महाशय वहाँ त्यागपत्र दे आये। लाला गुलज़ारी लाल की मिन्नतें कर के उनकी फर्म में चीफ़ एजेंट नियुक्त करा दिया, चार दिन बाद वहाँ से छोड़ आये। पूछा—क्यों ? उत्तर मिला, "दिन भर झूठ बोलना पड़ता है !" पूछे कोई कि सत्यवादी हरिश्चन्द्र के अवतार तो बस तुम्हीं रह गये, बाकी सारी दुनिया तो झूठ बोलती है। ......सर सीताराम की मिल में मैनेजर की नौकरी दिलायी, हफ्ते भर से ज्यादा वहाँ नहीं टिके। पूछा "क्यों ?" पता चला—मजदूरों पर अत्याचार इन से सहन नहीं होता। (**फिर पूरन से**) अब तुम्हीं बताओ, तुम्हें और क्या करने को कहूँ ? सुबह कहाँ जाने को कहा था, कुछ याद है ?

पूरन : मैं उनसे बात करना भी अपना अपमान समझता हूँ।

ताराचन्द : लाट है न हिन्दुस्तान का तू (**मुंह चिढ़ाते हुए**) बात करना भी अपमान समझता हूँ। बहिन का सारा जीवन संकट में है और भाई महाशय हैं कि उसके पति से बात तक करना अपमान समझते हैं।

पूरन : मैं जानता हूँ, उनके साथ बहिन का जीवन......

ताराचन्द : (**और भी गरज कर**) चुप रहो और अपनी यह फ़िलासफ़ी अपने पास रखो !

रानी : (आँगन से) पूरन भय्या, ज़रा इधर आना, यह ट्रंक ज़रा नीचे उतरवाना, सन्तू तो आया नहीं।

पूरन : आया रानी !

(चला जाता है।)

ताराचन्द : ज़रूरत से ज्यादा शिक्षा ने लड़के का दिमाग खराब कर दिया है। मुझे डर है, कहीं यह अपने साथ रानी को भी न ले डूबे। स्त्री का स्थान उसके पति का घर है, शिवराम। माता-पिता के पास लड़की कै दिन तक रह सकती है ?

शिवराम : बड़े-बड़े राजा महाराजा लड़कियों को अपने घर न बैठा सके ताराचन्द, फिर हम तुम किस खेत की मूली हैं ?

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे ! (हुक्के का कश लगा कर) तुम्हीं कहो, अगर रानी अपने घर न जायगी तो क्या उमर भर यहाँ बैठी रहेगी ? मैं जो उसे शिक्षा दिला रहा हूँ, तो उसका कारण यह नहीं कि वह सारी उमर यहाँ बैठी रहे या कहीं पचास-साठ की नौकरी करे, बल्कि यह कि त्रिलोक के लिए यह बहाना करने का मौका न रहे कि उसकी बीवी अनपढ़ है !

शिवराम : भले घरों की बहू-बेटियाँ कहीं नौकरी करती हैं !

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे ! यह कम्बख्त जो आज भाई बना फिरता है, कल यदि मेरी आँख बन्द हो जाय तो बात भी न पूछेगा। देखो शिवराम, इन लोगों के किये तो कुछ होगा नहीं। ये नादान छोकरे हैं, इन्हें इस

बात की समझ नहीं कि कौन सी बात करने की है और कौन सी नहीं। तुम्हें जो इतने सवेरे कष्ट दिया है तो इसलिए कि तुम स्वयं त्रिलोक से मिलो और उसे किसी न किसी तरह रानी को ले जाने पर राज़ी कर लो। त्रिलोक के पिता से किसी ज़माने में तुम्हारी खूब दोस्ती रही है। उस पर भी दबाव डालो। वे लोग मकान ही लेना चाहते हैं तो मैं अपना कचहरी वाला मकान त्रिलोक और रानी के नाम कर दूंगा। आखिर जमाई और बेटे में क्या फ़र्क है? रानी अपने पर सुखी रहे, म और मकान बनवा लूंगा!

शिवराम : रानी से भी उसे कुछ शिकायत है क्या? मैंने सुना है.....

ताराचन्द : अब तो दसियों शिकायतें हैं—वह पढ़ी-लिखी नहीं, सभ्य नहीं, सुन्दर नहीं, नम्र नहीं, मुंहफट है, सास ससुर का आदर नहीं करती......

शिवराम : तुमने रानी को समझाया नहीं?

ताराचन्द : अरे भाई, जब वह पिछले साल रोती हुई आयी थी तो मैंने समझा-बुझा कर उसे वापस भेज दिया था, लेकिन सच पूछो तो जैसा मैंने कहा, रानी का इसके अतिरिक्त कोई दोष नहीं कि वह त्रिलोक और उसके घर वालों की आशा के अनुसार दहेज़ में एक मोटर और मकान नहीं ले गयी।

शिवराम : तुम्हें कैसे मालूम हुआ? हुई थी तुम्हारे सामने इस बात की चर्चा?

ताराचंद : (**हुक्का गुड़गुड़ा कर**) अरे यह तो बुझ गया। (**नौकर को आवाज़ देते हैं**) सन्तू, ओ सन्तू !

रानी : (**दरवाज़े में झांक कर**) क्या बात है पिता जी ?

ताराचन्द : यह चिलम बुझ गयी, उससे कहना, ज़रा भर कर दे जाय !

रानी : वह तो अभी आया नहीं पिता जी, मैं आती हूँ ।

(**रानी आती है और चिलम ले जाती है।**)

ताराचन्द : (**रानी से**) ज़रा तमाखू दबा के भरना। पूरन क्या कर रहा है ?

रानी : (**जाते-जाते**) बाहर चले गये हैं बागीचे में !

(**चली जाती है।**)

ताराचन्द : (**शिवराम से**) त्रिलोक ने मुझ से तो कभी कुछ नहीं कहा। मेरे सामने तो झिझकते-झिझकते उसने इन्हीं बातों की चर्चा की थी, लेकिन रानी ने सुसराल में अपने शुरू के दिनों की बाबत जो कुछ बताया, उसी से मुझे पता चल गया कि असल में दुखती रग कौन-सी है। शुरू-शुरू में त्रिलोक ने रानी को उसके पिता की कंजूसी के लिए कोसा और कहा कि उसे धोखा दिया गया है। उसे आशा दिलायी गयी थी कि एक मोटर और मकान दहेज़ में दिया जायगा।

शिवराम : हुई थी ऐसी बात ?

ताराचन्द : (**ज़ोर देकर**) कभी नहीं। मैं और परमानन्द त्रिलोक को देखने गये थे; इस बात का ज़िक्र तक नहीं हुआ। उस वक्त तो न इतनी पढ़ी-लिखी की ज़रूरत थी, न

सुन्दर की। मेरे सामने त्रिलोक ने साफ़-साफ़ कहा कि मैं बहुत पढ़ी-लिखी लड़की पसन्द नहीं करता। बस, भले घर की ऐसी सरल और सुशील लड़की चाहिए जो मुझे घर का आराम दे सके। जब मैं शाम को कचहरी से थका-माँदा आऊँ तो मुझे लगे कि मैं घर आ गया हूँ। मुझे ऐसी पत्नी नहीं चाहिए, जो घर ही को कचहरी बनाये रखे—और मैंने उसे विश्वास दिलाया था कि वह रानी में यह सब खूबियाँ पायगा.......अब परमानन्द ने उसे अपनी तरफ़ से कोई सब्ज़बाग़ दिखाये हों तो मुझे ख़बर नहीं।

(रानी चिलम लिये हुए आती है।)

रानी : यह लीजिए चिलम पिता जी, उपले की आग रख कर लायी हूँ।

ताराचन्द : (**हुक्का गुड़गुड़ा कर**) जीती रहो, बेटा! (**शिवराम से**) लो शिवराम, पियो!

[रानी चली जाती है और शिवराम बेपरवाही से हुक्के के दो कश लगा कर नय ताराचन्द की ओर कर देता है]

शिवराम : लेकिन तुम्हारी इच्छा के बिना परमानन्द ने ऐसा क्यों किया होगा?

ताराचन्द : कभी मेरा खयाल था, मोटर और मकान देने का, लेकिन भाई, मुझे राजी की भी तो शादी करनी थी। रानी को मकान देता तो राजी को भी देता और फिर जब त्रिलोक और उसके पिता ने कहा कि हमें दहेज़ की

बिलकुल परवाह नहीं, भगवान का दिया हमारे पास बहुत कुछ है, हमें तो बस सरल और सुशील लड़की चाहिए तो मैं निश्चिन्त हो गया। फिर पूरन का भी खयाल था। लाख आवारा हो, फिर भी मेरा लड़का है।

शिवराम : हाँ-हाँ, पूरन के लिए कुछ भी न छोड़ना परले सिरे की बेइन्साफ़ी होती। पढ़ा-लिखा बे-ऐब लड़का है, जिस दिन भी टिक कर बैठ गया, तुमसे दुगना कमा लेगा।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे (**चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।**) मुझे क्या मालूम था कि त्रिलोक और उसके पिता ने जो कुछ कहा, वे सब ऊपर की बातें थीं। उनकी आँखें तो मोटर और मकान पर लगी थीं। ज्यों ही रानी घर गयी, उसे सुनना पड़ा कि वह एक कंजूस बाप की बेटी है। उसकी सास ने, उसके ससुर ने, उसकी जेठानियों और ननदों ने उसे दहेज की कमी के ताने दिये। त्रिलोक ने कई बार उन लड़कियों की चर्चा की जिनके पिता उसे कहीं अधिक दहेज देने को तैयार थे, या जो ज्यादा पढ़ी-लिखी, सभ्य संस्कृत......

(**कॉल-बेल बज उठती है।**)

— : (**अपनी बात जारी रखते हुए**) सुन्दर, सुशील या विनम्र थीं।

(**कॉल-बेल फिर बजती है।**)

— : (**उच्च स्वर में**) अरे सन्तू, देख कौन है ? बैठाना

बाहर बरामदे में। (**शिवराम से**) वह कुछ भी
कहती या करती, उसे किसी न किसी लड़की या उसक
रिश्तेदारों की बात सुननी पड़ती। उसे इतना तंग किय
गया कि वह यहाँ आ गयी। तब मैंने उसे समझा-बुझ
कर वापस भेज दिया। समझाया कि बेटी, पति जि
हालत में रखे, उसमें रहना चाहिए और ससुराल
दोष गिनने के बदले गुण ढूंढ़ने चाहिए। और मैं जानत
हूँ, रानी ने अपनी ओर से किसी तरह की शिकाय
का मौका नहीं आने दिया। मुझे क्या मालूम थ
कि ब्राह्मणों के भेस में ये लोग भेड़िये हैं! (**क्षण भ
हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर धीमे, भेद भरे स्वर में**) लेकि
शिवराम, एक तरह यह अच्छा ही हुआ। मैं मकान औ
मोटर दहेज़ में दे देता तो इन सब बातों का पता कै
चलता? भेड़ियों की उस माँद में रानो का तो खू
सूख जाता। तुम त्रिलोक को समझाना कि अगर व
रानी को ले कर अलग हो जाय तो मैं मकान भी
दूंगा और मोटर भी। सीधे यह सब न कहना। अपन
ओर से समझाना कि शायद ताराचन्द ने इसीलि
मकान नहीं दिया कि साझे में जायगा तो तुम्हारे हा
कुछ न आयगा या कोई और बहाना कर देना। मका
मोटर की मुझे चिन्ता नहीं, पर मैं नहीं चाहता, रान
भेड़ियों की उस माँद में रहे।

शिवराम : मैं सब समझता हूँ, मैं बड़ी सफ़ाई से बात चलाऊँग
और भगवान ने चाहा तो रानी आदर और सम्मान
अपने घर अलग रहेगी।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे......

पूरन : पिता जी, राय सरदारीलाल आये हैं।

ताराचन्द : (**घबरा कर उठते हुए**) तो उन्हें ले आये होते।

पूरन : जी उन्होंने कहा, "मैं यहीं बरामदे में बैठा हूँ, धूप बड़ी प्यारी लग रही है।"

शिवराम : (**उठते हुए**) अच्छा भई, तो मैं चला। त्रिलोक से आज ही मिलने की कोशिश करूँगा।

ताराचन्द : अरे भई, चलो, ज़रा धूप में बैठते हैं।

(**शिवराम को साथ लिये चलते हैं**)

— : (**जाते-जाते पूरन से**) सन्तू आये तो हुक्का बाहर भिजवा देना पूरन !

पूरन : जी बहुत अच्छा।

[**चले जाते हैं, रानी तेज़-तेज़ आती है और भाई के गले लग जाती है**]

रानी : (**रुँधे हुए गले से**) पूरन !

पूरन : (**उसकी पीठ थपथपाते हुए**) क्यों रानी, क्या बात है ?

रानी : पिता जी मुझे फिर वहाँ भेजना चाहते हैं। तुम्हीं कहो, मैं क्या करूँगी, वहाँ जा कर ? क्या इस तरह उनके लोभ का पेट भरने से मेरा घरेलू जीवन सुखी हो सकेगा ?

पूरन : तुम चिन्ता न करो, तुम्हारी इच्छा के बिना तुम्हें कोई वहाँ नहीं भेज सकता।

रानी : (**रुँधे हुए गले से**) पूरन भय्या !

पूरन : (**उसकी पीठ थपथपाते हुए**) मैं कहता हूँ, तुम ज़रा भी न घबराओ !

रानी : पिता जी दूसरों से तो कुछ नहीं कहते, लेकिन अपने मन में वे भी मुझे कम दोषी नहीं समझते। (**अचानक पूरन की आंखों में देखते हुए**) पूरन क्या तुम भी मुझे ही दोषी समझते हो ?

पूरन : दोषी ? (**ज़ोर दे कर**) कभी नहीं। मुझे तो इस बात का गर्व है, कि तुमने अपने स्वाभिमान की रक्षा की।

रानी : मैं उस दम घोंटने वाले वातावरण में किस तरह रह सकती थी ? मुझे पिता जी का डर न होता तो मैं कभी की आ जाती। मुझे भय था, वे मुझे फिर उसी नरक में जाने को कहेंगे। पहली बार जब मैं आयी थी, तो जानते हो, उन्होंने कितना शोर मचाया था ? उस वक्त मैं समझती थी, वे लोग अपनी गलती मान जायेंगे, इसलिए मैंने पिता जी से सब बातें न कही थीं। लेकिन इस बार, सब कुछ बता देने पर भी, मेरी बात मान लेने पर भी, वे फ़िर मुझे उसी नरक में भेजने का यत्न कर रहे हैं।

पूरन : तुम किसी तरह की चिन्ता न करो रानी! पिता जी पति को पत्नी का परमेश्वर समझते हों तो समझें, मैं ऐसा नहीं समझता। पति मेरे निकट पत्नी का परमात्मा नहीं, उसका साथी है और उस साथ को निबाहने की जिम्मेदारी पत्नी पर ही नहीं, पति पर भी है।

[पण्डित ताराचन्द और राय सरदारीलाल बातें करते हुए प्रवेश करते हैं]

ताराचन्द : अजीब मौसिम है यह भी, सरदारी लाल, धूप में बैठो तो गर्मी लगती है और छाया में बैठो तो ठंडक। (**हँसते हैं।**) अभी दो मिनट पहले धूप कितनी प्यारी लग रही थी, लेकिन इतने ही में सिर चकराने लगा। (**पूरन से**) ज़रा सन्तू को भेजो पूरन, हुक्का ताज़ा कर जाय। और देखो बाहर कोई तुमसे मिलने आया है।

पूरन : जी !

(जाता है। रानी भी जाने लगती है।)

ताराचन्द : रानी बेटा, तुम्हारे चाचा आये हैं।

रानी : (**मुड़ कर**) चाचा जी, प्रणाम।

सरदारीलाल : (**बैठते हुए**) जीती रहो, बेटी ! सोहागवती बनो और अपने घर सुखी रहो !

(रानी लजाती हुई चली जाती है।)

ताराचन्द : (**बैठते हुए**) तुम ने देखा सरदारीलाल, रानी कितनी दुबली हो गयी है ? पहले से आधी भी नहीं रही। जैसा मैंने कहा है, तुम एक बार वैसे ही कोशिश कर देखो। यह जब तक यहाँ है, मैं और किसी काम में ध्यान नहीं लगा सकता।

सरदारीलाल : मैंने तुमसे कह दिया, मैं पूरी कोशिश करूँगा।

[सन्तू आता है और हुक्का उठा कर ले जाता है सरदारी लाल तख्त के किनारे बैठते हैं।]

ताराचन्द : (कमरे में घूमते हुए) भगवान तुम्हारा भला करे। रानी जैसी मेरी बेटी है सरदारी लाल, वैसे ही तुम्हारी है। मैं तो सच पछता रहा हूँ वहाँ इसका ब्याह करके, पर जो हो चुका, हो चुका। मैं नहीं चाहता कि बात अब और बढ़े। किसी ने कहा है—आँख ओझल पहाड़ ओझल—दूर रहे तो दूर हो जायँगे। मैं जानता हूँ, त्रिलोक रानी को पसन्द करता है। ब्याह से पहले उसने उसे देख भी लिया था। उसे जिस बात की शिकायत है, वह मैं दूर कर दूंगा। मोटर और मकान ही की बात है, वह मैं दे दूंगा, मेरी बस एक ही शर्त है......

सरदारीलाल : वह मैं समझता हूँ। इस में उसी का लाभ है। वह अलग हो जायगा तो सुख से रहेगा।

ताराचन्द : असल में सारे झगड़े की जड़ तो यही बात है। मैंने जो मोटर और मकान नहीं दिये तो उसका एक बड़ा कारण यह भी था। जब मुझे रानो से पता चला कि उन्हें दहेज़ से निराशा हुई है, तो मैं कचहरी वाला मकान और बड़ी फोर्ड देने ही वाला था, लेकिन तभी मुझे पता चल गया कि राय बहादुर के सभी मकान गिरवी पड़े हुए हैं। तब मैंने सोचा कि जल्दबाज़ी न करनी चाहिए। जिसकी भूख इतनी बड़ी हो उसे एक कौर से क्या होगा! मेरा मकान उन्हें कुछ सहारा चाहे देता, उनकी बिगड़ी साख तो क्या बना सकता था!

सरदारीलाल : तुमने दे दिया होता, उन्हें कुछ सहारा ही मिल जाता।

ताराचन्द : मैं दे देता, पर उन्होंने जिस तरह रानो को परेशान

करना शुरू किया, जिस तरह मुझे और मेरे पुरखों को गालियाँ दीं, और जिस तरह रानी को घर से निकलने पर मजबूर कर दिया, उससे मेरा मन बुझ गया। मैंने तय किया कि मैं उस वक्त मकान और मोटर दूंगा, जब त्रिलोक भेड़ियों की उस माँद से अलग हो जायगा।

(राज उदास-उदास आती है।)

राज : (अपनी उदासी को छिपाने और हँसने की चेष्टा करते हुए) पिता जी प्रणाम, चाचा जी प्रणाम !

ताराचन्द : अरे राजी (मुड़ कर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) कहो बेटी प्रसन्न तो हो ?

सरदारीलाल : अच्छा भइ, मैं चलता हूँ।

ताराचन्द : अरे भाई ठहरो ! मैं भी चलता हूँ तुम्हारे साथ ! कम से कम दरवाज़े तक तो पहुँचा आऊँ !

सरदारीलाल : (उठ कर) यह शिष्टाचार रहने दो !

ताराचन्द : तुम ने राजी के प्रणाम का उत्तर नहीं दिया सरदारीलाल!

सरदारीलाल : (मुड़ कर) जीती रहो, जीती रहो, बेटी !

ताराचन्द : (राजी के कंधे पर हाथ रख कर सरदारीलाल के साथ-साथ चलते हुए) राजो !

राज : जी पिता जी !

ताराचन्द : यह तुम इतनी दुबली क्यों हो गयी हो ?

राज : (दुख को दबाने और मुस्कुराने की कोशिश करते हुए) जी नहीं, मैं तो पहले से मोटी हो गयी हूँ।

ताराचन्द : (**चलते-चलते क्षण भर रुक कर**) तुम्हारा सामान कहाँ है ?

राज : ट्रंक है, सो बाहर बरामदे में पड़ा है ।

ताराचन्द : मदन नहीं आया ?

राज : नहीं, मैं अपने देवर के साथ आयी हूँ ।

ताराचन्द : तो कहाँ है वह, साथ क्यों नहीं लायी ?

राज : जी उसे जल्दी थी । मुझे यहाँ छोड़ कर स्कूल चला गया है । जीजी कहाँ है ?

ताराचन्द : यहीं थी, शायद उधर आँगन में हो ।

राज : और भय्या ?

ताराचन्द : वह भी उधर बागीचे में होगा (**उसकी पीठ को थपथपाते हुए**) और तो सब प्रसन्न हैं, तुम्हारे सास-ससुर.....

राज : (**चलते-चलते शरमा कर**) जी !

ताराचन्द : (**उसे छोड़ कर सरदारीलाल के कंधे पर हाथ रख कर चलते हुए**) बड़े भले हैं राजी के ससुर सरदारीलाल! —सीधे-साधे, भोले-भाले, नेक खयाल और धर्म परायण ! घमंड तो उन्हें छू भी नहीं गया। जब मैं पहले-पहल राजी के लिए उनसे मिला तो कहने लगे (**रुक कर**) हमें लेन-देन में विश्वास नहीं पंडित जी, हम तो आपको चाहते हैं । आप हमारे हो गये तो और क्या चाहिए ! (**फिर चल पड़ते हैं।**) मैं तो ऐसे ही लोगों को पसन्द करता हूँ। और भाई मैंने फैसला कर लिया है कि त्रिलोक के नाम हो या न हो,

पर मदन के नाम एक मकान ज़रूर कर दूंगा। लड़का तो बेचारा गाय है।

(**चबूतरे के दरवाज़े से निकल जाते हैं।**)

राज : (**अपने पिता की अन्तिम बात सुन कर रुकती है, मुड़ कर, जाते हुए अपने पिता को देखती है। ओठों पर तिक्त, व्यंग्यमयी मुस्कान फैल जाती है**) बेचारा गाय !

[**धम्म से वहीं आंगन के दरवाज़े के पास कौच में धँस जाती है। सन्तू हुक्का ताज़ा कर के लाता है।**]

सन्तू : अरे राज ! कहो बेटी, कब आयी ?

राज : अभी आ रही हूँ, सन्तू !

(**बाग के दरवाज़े से पूरन भागा आता है।**)

पूरन : हल्लो राजी !

राज : भय्या !

(**पूरन के गले से लिपट जाती है।**)

पूरन : पास से निकल गयी और मुझे देखा तक नहीं ! (**जब उसके मुंह को देखता है तो चौंकता है**) अरे तुम तो पीली हो गयी हो, हल्दी खाती रही हो या (**हँस कर**) जीजा जी ने ......?

राज : (**पीड़ा-मिश्रित-क्रोध से**) भय्या !

पूरन : अच्छा-अच्छा भई, (**पीठ थपथपाता है**) नाराज़ क्यों होती हो जीजा जी का नाम सुन कर ? हमारी लाल गोरी बहिन को ले के हल्दी सी पीली कर दिया और हम इतना भी न कहें कि......

राज : भय्या, तुम कभी न मानोगे !

पूरन : अच्छा भाई, बिगड़ती क्यों हो ? (**रानी को आवाज़ देता है ।**) रानी, देखो राजी आयी है । (**सन्तू से, जो हुक्का रख कर जा रहा है**) सन्तू, ज़रा रानी को भेज, और राज का ट्रंक उठा कर भीतर रख, बाहर बरामदे में पड़ा है ।

सन्तू : (**जाते-जाते**) जी बहुत अच्छा !

(**आंगन के दरवाज़े से रानी भागी आती है**)

रानी : (**राज से गले मिलते हुए**) अरे तू इधर बैठक में क्या गोबर-गणेश बनी बैठी है । उधर क्यों नहीं चली आयी ।

राज : पिता जी और चाचा सरदारीलाल बैठे थे, इसलिए !

(**कॉल-बेल बज उठती है ।**)

पूरन : (**असन्तोष से**) यह इतवार का दिन तो एक मुसीबत बन गया है । सुबह से जो यह कॉलबेल बजनी शुरू होती है......।

[**कॉल-बेल फिर बजती है और पूरन "जी आया" कहता हुआ भागा जाता है ।**]

राज : (**रानी के गले से चिमटती हुई रुंधे गले से**) जीजी !

[**रानी उसकी पीठ थपथपाती है । राज धीरे-धीरे रोने लगती है ।**]

रानी : अरे !......बात क्या है ?......राजो !...... क्यों ?

राज : (**और भी चिमटते हुए**) जीजी !

(**और भी ज़ोर से सिसकने लगती है ।**)

रानी : क्यों राजो, क्या बात है ?

राज : (**आँसू पोंछते हुए, तनिक सम्हल कर**) बात क्या होगी, योंही तुम्हें देख कर मन भर आया । कहो त्रिलोक जीजा जी आये ?

रानी : (**व्यंग्य से हँस कर**) आ गये ! तुम अपनी कहो, तुम्हें क्या दुःख है ?

राज : नहीं जीजी, में हर तरह से सुखी हूँ !

रानी : (**हँसते और उसे साथ लिये रंगमंच के किनारे आते हुए**) सुख की कोई झलक तो तुम्हारे मुख पर दिखायी नहीं देती ! (**दोनों हाथ उसके कन्धों पर रख देती है ।**) देखो राजो, मुझसे न छिपाओ, मैं सब भुगते बैठी हूँ ।

राज : कुछ भी तो नहीं जीजी !

रानी : क्या यह सब तुम मेरी ओर देख कर कह सकती हो ?

राज : (**मुस्कराने का असफल प्रयास करते हुए**) क्या ?

रानी : मुस्कान को पीड़ा में छिपाने की कोशिश न करो, राजो, तुम्हारी आँखें तो डबडबा रही हैं ।

राज : (**भरे हुए गले से**) जीजी !

(**सहसा रानी के गले से चिमट जाती है ।**)

रानी : (**उसकी पीठ थपथपाते हुए दीर्घ-निश्वास भर कर**) संसार भर में ब्याह स्त्री के लिए सुख-शान्ति का सन्देश लाता है, पर हमारी गुलामी के बन्धन इसके बाद और भी मजबूत हो जाते हैं । (**राज सिसकती है**) बस-बस,

दुख को दिल में न छिपाओ बहिन, घाव कर देता है। और कुछ समय बाद वही घाव नासूर बन जाता है। क्या सास तंग करती है ?

राज : नहीं, वे बेचारी तो कभी कुछ नहीं कहतीं।

रानी : ससुर ?

राज : वे तो देवता हैं।

रानी : ननदें ?

राज : वे न होतीं तो मैं अब तक शायद खत्म हो चुकी होती।

रानी : तो फिर......तो फिर तुम्हारे......

(राज बहिन के गले से चिमट कर सिसकने लगती है।)

— : लेकिन प्रोफेसर मदन तो पढ़े-लिखे आदमी हैं। क्या बात है, कह डालो।

(राज चुपचाप सिसके जाती है।)

— : मुझसे न कहोगी तो और किससे कहोगी ?......(**राज सिसके जाती है।**)......कुछ कहो भी। प्रोफ़ेसर साहब तो बड़े हँसमुख और रसीले आदमी हैं।

(उसे फिर ले जा कर कौच पर बैठा देती है।)

राज : (**आँसू पोंछते हुए, धीरे-धीरे**) सुनती हूँ, बड़े हँस-मुख थे। ठहाके मारते थे तो मकान गूंज उठता था; लेकिन मैंने कभी उनका ठहाका नहीं सुना। मुस्कराते हैं, पर उस मुस्कान में उल्लास का तो कहीं ढूंढे से भी पता नहीं चलता।

रानी : लेकिन वे तो......ब्याह में तो......

राज : एक दिन मैंने पूछा—"सुनती हूँ, आप खूब हँसते थे, ठहाके मारते थे, मैंने तो एक भी नहीं सुना"—तब ठहाका मार कर हँस दिये—खाली, खोखला, नीरस ठहाका !

रानी : (समझने की कोशिश करते हुए) हूँ ।

(स्वयं भी कौच के बाजू पर बैठ जाती है ।)

राज : कहीं हँस भी रहे होते और चली जाती तो उनकी हँसी तत्काल बन्द हो जाती । काले-काले से मेघ उनके मुख पर घिर आते । फिर जो वे मुस्कराते भी तो उनकी वह मुस्कान, कहीं योजनों दूर से आने वाली, थकी-हारी परदेसिन सी दिखायी देती ।

रानी : उन्होंने तुम्हें पसन्द नहीं किया !

राज : सुनती हूँ, किसी बहुत पढ़ी-लिखी लड़की से ब्याह करना चाहते थे, किन्तु एक तो उस लड़की के माता-पिता न थे, दूसरे वह ब्राह्मण न थी, इसलिए इनके माता-पिता तैयार न हुए । इन्होंने बहुतेरा समझाया, पर माँ ने उन सब कष्टों का वास्ता दिलाया, जो इन्हें पाल-पोस कर बड़ा करने में उसने सहे थे और पिता ने उन सब मनीआर्डरों की रसीदों का ढेर लगा दिया, जो इनकी शिक्षा के निमित्त वे हर महीने भेजते रहे थे । बारह हजार की रसीदें थीं और वे चाहते थे कि उनका लड़का उनकी इच्छानुसार शादी करे ।

रानी : (सव्यंग्य) और लोग माँ-बाप की ममता के गीत गाते हैं ।

[उठ कर कमरे का एक चक्कर लगाती है और फिर उसके पास आकर बैठ जाती है ।]

रानी : तो उन्होंने तुम्हें पसन्द नहीं किया !

राज : मैं क्या जानूं, जीजी ! ऐसा लगता है, जैसे वे उस लड़की को भुला नहीं सके !

रानी : तुम उनका मन बहलाने की कोशिश करतीं ।

राज : मैंने लाख कोशिश की, पर असफल रही । उनके पास जाती तो ऐसे बैठे रहते, जैसे मुझसे कोसों दूर हों । बातें करते तो मालूम होता, जैसे मुझसे नहीं, शून्य से बातें कर रहे हैं । लेटते तो लगता, जैसे बर्फ़ के पानी में नहा कर लेटे हैं ।

रानी : (केवल दीर्घ-निश्वास लेती है ।) हूँ......हूँ......!

राज : हाँ, जब मैं रोती तो मुझे बाहों में भर कर प्यार करने लगते । कहते—तुम अभागी हो राज, मैं भी अभागा हूँ और दर्शनो भी......।

रानी : दर्शनो ?

राज : वही लड़की, जिससे वे शादी करना चाहते थे । पूरा नाम सुदर्शन है । एम० ए० है । उसने अभी उनका पीछा नहीं छोड़ा ।

रानी : अजीब बेशर्म लड़की है ।

राज : कभी जब मैं कहती—आप जिसे चाहें शौक से प्यार करें, पर मुझे भी न ठुकरायें, तो मुझे बाहों में भींच लेते, पर साफ़ लगता, जैसे मन से नहीं, सिर्फ मेरे रोने से मजबूर होकर प्यार करते हैं । और कभी इस तरह

प्यार करते-करते अपने बाल नोचने लगते। कहते—मैं कायर हूँ, कायर। माता-पिता के भय से मैंने अपना और तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया। और फिर रोने लगते। उस समय जीजी, न जाने मेरे दिल को क्या होने लगता। मैं उन्हें बाहों में भर लेती। पर मेरे स्पर्श में जैसे हजार बिच्छुओं के डंक हों, वे हड़बड़ा कर उठ बैठते। मुझे परे हटा देते। पागलों की तरह चिल्ला उठते—तुम मुझसे क्यों चिमटती हो, राज ? तुम्हें मुझको छोड़ कर चला जाना चाहिए, तुम्हें मेरा कोई काम न करना चाहिए। (**दीर्घ-निश्वास लेती है।**) लेकिन जीजी, न जाने क्यों, जितना वे मुझसे भागने की कोशिश करते, उतना ही मैं उनके निकट होना चाहती !

रानी : (**थकी-सी आकर उसके पास कौच पर बैठ जाती है।**) तो अब वे तुम्हारे पास नहीं आते ?

राज : नहीं, कुछ दिन पहले तक लगातार आते थे, पर जब भी आते, ऐसा लगता जैसे बँधे-बँधे आये हैं।

रानी : (**सिर्फ लम्बी सांस भरती है।**) हूँ !

राज : (अपनी बात जारी रखते हुए) एक दिन कहते थे—क्यों न हम अभी कुछ देर दो मित्रों की तरह रहें। धीरे-धीरे हम एक दूसरे को समझ जायँगे। एक दूसरे के गुण-दोषों को पहचान लेंगे। फिर हम पति-पत्नी की तरह रहेंगे—पति-पत्नी की तरह ऐसी ज़िन्दगी बितायेंगे, जिसका हर नया दिन थकान और उकताहट लाने के बदले स्नेह और उल्लास लायेगा।

रानी : तुम ऐसा ही कर लेतीं !

राज : मैंने कोशिश की, पर तब सास जी ने कहा—तुम तो पगली हो। वह तुमसे दूर रहना चाहता है। उस पर उस चुड़ैल ने जादू कर रखा है। उसका मन उड़ता रहता है, बाँध कर न रखोगी तो उड़ जायगा और उड़ा हुआ पंछी फिर हाथ नहीं आता। मैंने उन्हीं का कहा माना। जैसे वे कहती रहीं, मैं करती रही, पर इस प्रयास में जो थोड़ा बहुत बन्धन था, वह भी टूट गया।

[**रानी कुछ कहना चाहती है, पर नहीं कहती, क्षण भर दोनों चुप रहती हैं। राज उठ कर धीरे-धीरे कमरे में घूमने लगती है।**]

— : ज्यों-ज्यों मैं उनके निकट जाने का प्रयास करती, वे मुझ से दूर भागते। दोपहर को उन्होंने घर आना छोड़ दिया। लंच कालेज ही मँगा लेते। शाम को भी देर से आते। धीरे-धीरे यह देर बढ़ती गयी। बहुत रात गये घर आते और चुपचाप बिस्तर पर लेट जाते। मैं चाहती उनके पाँव दबाऊँ, उनके सुख-दुख की बात पूछूं, किन्तु मेरी तो शकल ही से जैसे उन्हें भय आता—"मुझे मत छेड़ो, मुझे सोने दो!" यही कहा करते। मैं चुप-चाप रोने लगती तो लपक कर उठ बैठते और घंटों आँगन में चक्कर लगा कर गुज़ार देते। कभी चिढ़ कर कहते—"तुम जाने किस मिट्टी की बनी हुई हो? तुम्हें स्वाभिमान छू भी नहीं गया। मैं तुमसे इतनी घृणा करता हूँ और तुम मेरे पाँव दबाना चाहती हो!"

(**हताश-सी तख्त पर बैठ जाती है।**)

रानी : (**उठ खड़ी होती है ।**) मैं हैरान हूँ, तुमने यह सब कैसे सहा ! मैं तो बहुत पहले छोड़ कर चली जाती ।

राज : न जाने क्यों जीजी, उनकी घृणा पर मुझे कभी क्रोध नहीं आया । जब-जब उन्होंने मुझसे घृणा का बर्ताव किया, मेरे मन में सदा दया उपजी । सदा जी हुआ, उनके पास जाऊँ, अपने प्यार से उनके घावों को भर दूं । पर मैं जितना उनके निकट जाने की कोशिश करती रही, वे मुझसे दूर होते गये ।

(गला रुँध जाता है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं ।)

रानी : (**उसके पास बैठते और उसके कंधे पर प्यार का हाथ फेरते हुए**) राजी !

राज : (**उसी प्रकार रुँधे गले से**) निरन्तर रोते-जागते मेरी यह हालत हो गयी । (**सिसकी रोक कर**) घर वालों से आँख मिलाने में मुझे लज्जा आने लगी । ऐसा मालूम होने लगा, जैसे सब मुझे दया की दृष्टि से देखते हैं । जैसे उनकी यह दया धीरे-धीरे घृणा में बदल रही है ।

रानी : मैं पूछती हूँ, तू पहले ही क्यों न चली आयी !

राज : आशा का एक अज्ञात-सा तार बँधा हुआ था जीजी !

[कुछ देर चुप रहती है । रानी चुप-चाप शून्य में देखती घूमे जाती है । दाँत उसके भिचे हुए हैं और लगता है, जैसे उसके मन में क्रोध का एक दुर्निवार बवण्डर उठ रहा है ।]

— : परसों पता चला कि अब हॉस्टल ही में रहेंगे । सुपरिंटेंडेंट हो गये हैं । बस वह तार भी टूट गया । मैं

ने पत्र लिख कर उन्हें दो-तीन मिनट के लिए बुलवाया और कहा—मेरा मन यहाँ नहीं लगता, मुझे मैके भिजवा दो ! कहने लगे—"हाँ, तुम कुछ दिनों के लिए मैके हो आओ ।" और चुपचाप उन्होंने मेरी सब चीजें ट्रंक में भर दीं । एक छल्ला तक सास के पास न रहने दिया और छोटे भाई से कहा कि वह मुझे छोड़ आये । इसके बाद जैसे आये थे, वैसे चले गये । न उन्होंने मुझ से कुछ कहा और न मैंने ही उनसे कुछ पूछा ।

रानी : सास ने रोका नहीं ?

राज : उन्होंने बहुतेरा कहा । उनकी ओर देखती तो वहाँ से हिलने को जी न चाहता । मैं तो उनकी सेवा में ज़िन्दगी भर पड़ी रहती, लेकिन वहाँ एक वे ही तो नहीं, दूसरे भी हैं और उन सब की नज़रों का सामना करना मेरे बस की बात न थी ।

रानी : (**जिसका क्रोध शब्दों का रूप धर लेता है ।**) मैं पूछती हूँ, जब वे एक और लड़की को चाहते थे, तो उन्होंने क्यों की यहाँ शादी ? वे तो पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं, प्रोफेसर हैं । बच्चे नहीं कि उनके पिता ने दो चाँटे मारकर उन्हें ब्याह के मंडप पर बैठा दिया हो । क्यों की उन्होंने यह शादी ?

राज : माता-पिता के उपकारों का बदला चुकाने के लिए ।

रानी : (**तिक्त व्यंग्य से**) तो फिर उन उपकारों को इतनी जल्दी क्यों भूल गये ?

राज : मैंने भी एक दिन पूछा था। कहने लगे—"मेरे लिए ब्याह करना आत्म-हत्या करना था। मैं सोचता था—मैं अपने भावों का गला घोंट दूंगा, अपने अतीत के लिए मर जाऊँगा, लेकिन मैं मर नहीं सका और जी भी नहीं सका। मैं अपाहज हो गया हो गया हूँ। तुम उस आदमी की कल्पना करो, जो आत्म-हत्या करने के प्रयास में अपाहज हो जाय!"

रानी : इतनी सज-धज से आये थे आत्म-हत्या करने!

राज : सज-धज उनके सगे-सम्बन्धियों के कारण थी।

रानी : इतना हँसते थे, ठहाके मारते थे।

राज : वह सब तो दिखावा था, दिल तो वे पीछे ही छोड़ आये थे।

रानी : (**लगभग चिल्ला कर**) लेकिन तुम्हारे लिए उन्होंने क्या सोचा? तुम्हारा भी तो उन पर कुछ अधिकार है, तुम उनकी ब्याहता हो!

राज : एक दिन सास के कहने पर मैं उनके पास गयी थी। उदास, थके-थके से, वे बिस्तर पर लेटे हुए थे। मैंने हँस कर कहा—"दर्शनों की बात सोच रहे हो?" एक उदास सी मुस्कान उनके ओठों पर फैल गयी। मैंने कहा—"मेरा भी अधिकार है। मैं आपकी परिणीता हूँ। इतने बारातियों के सामने, यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके, आप मुझे ब्याह लाये हैं!" कहने लगे—"तुम्हारे, अधिकार की नींव एक सामाजिक प्रथा पर टिकी है। हृदय से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। सुदर्शन का अधिकार

मेरे हृदय से सम्बन्ध रखता है। बारातियों, पण्डितों, पुरोहितों ने, हमारे माता-पिता ने, यज्ञ की अग्नि ने हमें एक दूसरे के शरीर सौंप दिये हैं, हृदय तो नहीं सौंपे।"

रानी : यही तो मैं पूछती हूँ। यदि उनके हृदय पर किसी और का अधिकार था तो क्यों की उन्होंने शादी ?

राज : कहते थे—"मैंने सोचा था मन की चौखट से सुदर्शन का चित्र हटाकर तुम्हारा लगा लूंगा, लेकिन मैं सफल नहीं हो सका।"

रानी : कैसी निर्लज्ज लड़की है यह दर्शनो। जब उन्होंने उसका इतना अपमान करके तुमसे ब्याह कर लिया तो वह किस तरह उनका पीछा पकड़े है ! मैं जीवन भर ऐसे आदमी का मुंह न देखती।

राज : शायद वह अब भी उनसे प्रेम करती है।

रानी : मैं लाख प्रेम करती, पर उस अपमान के बाद, अपने स्वाभिमान को छोड़ कर, उनके पीछे यों मारी-मारी न फिरती।

(बृजनाथ और ताराचन्द बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।)

ताराचन्द : तुम ज़रा बात कर देखो बृजनाथ। तुम उसके पिता के घनिष्ट मित्र हो। तुम्हारा वह बड़ा आदर करता है। तुम्हारी बात मानता है। रानो तुम्हारी भी तो बेटी है।

रानी : चलो आँगन में चलकर बैठें !

[दोनों चली जाती हैं लेकिन नीचे के सम्वादों में कभी-कभी आँगन के पर्दे से लगकर बातें सुनती हैं।

ताराचन्द आकर तख्त पर बैठते हैं और बृजनाथ कोच पर।]

ताराचन्द : (**हुक्का गुड़गुड़ा कर**) यह चिलम तो बुझ गयी। सन्तू, ओ सन्तू !

सन्तू : (**आँगन से**) जी सरकार !

(**भागा आता है।**)

ताराचन्द : यह हुक्का नहीं ताज़ा किया तूने ? चिलम तो बिल्कुल ठंडी पड़ी है।

सन्तू : मैं तो ताज़ा करके रख गया था। सरकार ही चले गये थे। अभी लाता हूँ।

(**चिलम लेकर चला जाता है!**)

ताराचन्द : (**खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हुए**) जब तुम्हें सब बातों का पता है बृजनाथ तो फिर कोशिश क्यों नहीं कर देखते ? मैंने वृन्दाबन से कह रखा है, शिवराम, सरदारीलाल और दूसरे मित्रों से भी कह रखा है। (**भेद भरे स्वर में**) मैं स्वयं उससे यह बात नहीं कर सकता। उसे जो शिकायत है, उसे मैं दूर करने को तैयार हूँ। लेकिन यदि मैं उससे पूछूंगा, तो वह इस शिकायत के अस्तित्व ही से इन्कार कर देगा। रानो को फिर से बसाने के लिए तुम युक्तियाँ तो दूसरी देना, लेकिन चतुराई मे इस बात की ओर भी संकेत कर देना कि यदि वे दोनों अलग रहेंगे तो मैं अपना एक मकान उनके नाम कर दूंगा और कुछ समय बाद मोटर भी ले दूंगा। मेरी लड़की वहाँ आराम और आदर से रहे, यही मैं चाहता हूँ।

बृजनाथ : मैं कोशिश करूँगा।

ताराचन्द : (**खाली हुक्का गुड़गुड़ा कर**) तुम समझदारी से काम लोगे तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह बिगड़ी हुई बात बन जायगी (**और भी भेद भरे स्वर में**) और फिर कचहरी में तुम्हारा जो प्रभाव है, उसे भी तुम काम में ला सकते हो। धमकी देना ही काफी होगा। (**और भी धीरे-धीरे**) कहीं माँ या भाभी के कहने पर दूसरी शादी न कर ले, इसलिए जो भी करना है, जल्दी करना है। ये अनपढ़ भाभियाँ और मायें जो न करें थोड़ा है। त्रिलोक ज्यों-ही रानो को लेकर अलग हुआ, मैं मकान उसके नाम कर दूंगा। तुम्हारी इस कोशिश से यदि रानो की ज़िन्दगी सँवर जाय तो वही नहीं, मैं भी जीवन भर तुम्हारा आभार मानूंगा।

[**सन्तू चिलम लाकर हुक्के पर रखता है। ताराचन्द हुक्के के लम्बे-लम्बे कश खींचते हैं।**]

बृजनाथ : मैं पूरी कोशिश करूँगा, लेकिन तुम्हें यकीन है कि और कोई बात नहीं।

ताराचन्द : यों तो बीसियों हैं, लेकिन सब की तह में वही लोभ काम करता है। वह मानेगा नहीं, लेकिन तुम ज़रा चतुराई से काम लोगे तो वह राह पर आ जायगा।

बृजनाथ : मैं आज ही उस से मिलूंगा।

ताराचन्द : मुझे रानो के ब्याह में बड़ा कटु अनुभव हुआ बृजनाथ। अच्छे-अच्छे योग्य और बुद्धिमान लड़के मेरी आँखों के सामने आये, पर मैं इसी हठ पर अड़ा रहा कि लड़की

अपने से बड़े घर में जाय। मैं क्या जानता था, बाहर से बड़े दिखायी देने वाले, भीतर से खोखले होते हैं।

बृजनाथ : मैं तो सदा ही से इस बात के पक्ष में हूँ कि घर की अपेक्षा लड़का देखा जाय !

ताराचन्द : (**एक लम्बा कश लगा कर**) राजी के लिए मैंने लड़का ही देखा है। मदन के पिता बेहद गरीब थे। गा-बजा कर, मुहल्ले-मुहल्ले रामायण और महाभारत की कथा करके उन्होंने अपने लड़के को शिक्षा दिलायी और उनका सारा श्रम और त्याग सफल हुआ। एम० ए० करते ही उसे कालेज में नौकरी मिल गयी। अब वह पी-एच० डी० की तैयारी कर रहा है। इतना समझदार, हँसमुख भला लड़का है कि पल भर को जो उससे बातें करता है, उसके गुण गाने लगता है।

बृजनाथ : मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी हुई कि राज इतने अच्छे घर ब्याही गयी।

ताराचन्द : (**सोल्लास**) मदन तो गाय है गाय ! राज तो वहाँ सचमुच राज करेगी !

[**प्रसन्नता से हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। शिवराम घबराया हुआ प्रवेश करता है।**]

शिवराम : ताराचन्द ! तुमने सुना, तुम्हारा जमाई दूसरी शादी कर रहा है !

[**हुक्के की नली ताराचन्द के हाथ से छूट जाती है और वे उठने का प्रयास करते हैं।**]

ताराचन्द : (**आधे बैठे आधे उठे**) कौन, त्रिलोक ?

शिवराम : नहीं मदन !

[ताराचन्द फिर धम्म से तख्त पर बैठ जाते हैं। आँगन के दरवाजे से लगी राज के गिरने और रानो के चीखने की आवाज़ आती है ।]

रानी : पिता जी......पिता जी......!

शिवराम : मैं कहता हूँ, तुम बैठ क्या गये हो ताराचन्द ? कुछ करना चाहते हो तो अभी कार ले कर चलो। 'खाई वालों की धर्मशाला' में हो रही है शादी । मुझे तो विष्णु पण्डित से पता चला । उसका वह सिर-फिरा लड़का गया है ब्याह पढ़ाने ।

ताराचन्द : (तत्काल उठ कर) सन्तू......सन्तू.....!

(सन्तू भागा आता है ।)

रानी : (आंगन से) पिता जी......पिता जी.....!

ताराचन्द : कार ले कर जाओ और फैक्टरी से बिजली पहलवान और कुछ दूसरे मजदूरों को लेकर 'खाई वालों की धर्मशाला' में पहुँचो। मैं तुम्हारी कार में चलता हूँ शिवराम !

शिवराम : मैं तो पैदल ही भागा आया हूँ ।

बृजनाथ : चलिए मैं आपको अपनी कार में ले चलता हूँ ।

ताराचन्द : (चलते-चलते रुक कर) क्या यह शादी मदन के पिता की इच्छा......?

शिवराम : (दोनों बाहों से उन्हें धकेलते हुए) चलो चलो, बताता हूँ ।

(सब जल्दी-जल्दी निकल जाते हैं ।)

रानी : (आँगन से) पिता जी......पिता जी.......
सन्तू.....सन्तू.....पूरन.....पूरन.......!

[आँगन से घबरायी हुई भागी आती है। पूरन बाग की ओर से भागा आता है। दोनों टकराते-टकराते बचते हैं। एक दूसरे को थामते हैं।]

पूरन : क्या बात है ? क्या बात है ?

रानी : राज बेहोश हो गयी है। देखो तो उसके दाँत पच्ची हो गये हैं।

(दोनों आँगन की ओर को भागते हैं)

(पर्दा गिरता है।)

दूसरा अंक

[पर्दा कुछ क्षण बाद उसी कमरे में उठता है। निमिष भर बाद पूरन और रानी अचेत राजी को उठाये हुए आते हैं।]

पूरन : क्या हो गया इसे ?

रानी : बस खड़े-खड़े गिर पड़ी !

(उसे तख्त पर लिटा देते हैं।)

पूरन : घबराओ मत, लपक कर थोड़ा-सा पानी ले आओ।

(रानी जाती है।)

— : एक चमच भी लेती आना, (राज को हिलाते हुए) राजी......राजी......!

(राज बेसुध है।)

— : राजी......राजी......!

[उठकर बिजली का पंखा चला देता है। रानी पानी लाती है ।]

रानी : अरे, तुमने पंखा खोल दिया ? यहाँ तो पहले ही ठंड है !

पूरन : तुम चिन्ता न करो । पानी लाओ, इसके मुंह पर छींटे दूं ।

[रानी पानी देती है। पूरन राज के मुख पर छींटे मारता है ।]

— : राजी......राजी.....!

(राज पूर्ववत बेसुध है ।)

— : (फिर छींटे मारता है ।) राजी......राजी....!

(राज हिलती नहीं, बेसुध पड़ी रहती है ।)

पूरन : ज़रा चमच दो ।

रानी : मैं भूल गयी, अभी लायी ।

(भाग जाती है ।)

पूरन : (उसके बालों पर हाथ फेरते हुए) राज......राजी ......और कहती थी मैं बड़ी प्रसन्न हूँ ससुराल में !

(रानी चमच ले आती है ।)

रानी : यह लो चमच ।

पूरन : तुम जरा इसकी नाक उँगलियों से दबाओ, मैं पानी का चमच मुंह में डालता हूँ ।

(रानी राज की नाक दबाती है ।)

— : (चमच भर कर मुंह में डालते हुए) यह हिस्टीरिया

का दौरा है या कुछ और ? पहले तो कभी इसे यों मूर्च्छा न आयी थी।

रानी : दाँत पच्ची हैं, पानी तो बह गया सारा।

पूरन : तुम चिन्ता न करो, नाक दबाये रखो !

[रानी बहिन की नाक दबाये रखती है। साँस के रुक जाने से राज के दाँत खुल जाते हैं। पूरन पानी का चमच उसके मुंह में डालता है। कुछ क्षण बाद राज तेज-तेज़ साँस लेती है। वह दूसरा चमच उसके मुंह में डालता है। अचेतावस्था में गरगराहट के साथ राज पानी पी जाती है।]

पूरन : (प्यार से) राजी......राजी.....!

रानी : (प्यार से) राजो......राजो......!

[राज पूरी तरह तो होश में नहीं आती, किन्तु पहले उसका एक हाथ हिलता है, फिर उसकी आंखें खुल जाती हैं।]

पूरन : (प्यार से) राजो, क्या बात थी ? चक्कर आ गया था ?

[राज उठना चाहती है। पूरन बांह के सहारे उसे उठा कर बैठा देता है।]

— : कामरेड बिहारी आ गये, मैं उनके साथ बातों में उलझ गया। बात क्या है ? इतनी दुबली हो रही हो तुम। कभी शीशे में अपना मुंह नहीं देखा ? खाने को नहीं देते रहे जीजा जी तुम्हें ?

रानी : तुम्हारे जीजा जी दूसरी शादी कर रहे हैं !

पूरन : क्या.....कौन ?

रानी : मदन !

पूरन : मदन ?

[**चौंक कर उठ खड़ा होता है, सहारा हट जाने से राज फिर लेट जाती है ।**]

रानी : अभी चचा शिवराम ने बताया । 'खाई वालों की धर्मशाला' में हो रही है शादी । चचा शिवराम और बृजनाथ के साथ पिता जी वहीं गये हैं ।

पूरन : मुझे पहले ही डर था......मैंने पहले ही कहा था ।

(**हताश-भाव से जाकर कौच में धँस जाता है ।**)

रानी : एम० ए० पास लड़की है, जिसके न माता हैं न पिता ।

पूरन : शादी के लिए न माता की ज़रूरत है, न पिता की ।

रानी : जाति से भी वह खत्री है ।

पूरन : जाति का भी शादी से कोई सम्बन्ध नहीं । (**बेचैनी से उठता है ।**) उसके लिए साथी हमदर्द और हमख़याल होना चाहिए । (**क्षण भर चुपचाप घूमता है फिर**) किससे शादी कर रहे हैं प्रोफेसर साहब ?

रानी : कोई बे-हया लड़की है, जिसे अपने मान-अपमान का ज़रा भी ख़याल नहीं । प्रोफ़ेसर मदन ने उसे छोड़कर राज से शादी कर ली तो भी वह उनके पीछे पड़ी है ।

पूरन : कौन जाने, वे ही उसके पीछे पड़े हों ! क्या नाम है उसका ?

राज : दर्शनो ।

पूरन : सुदर्शना बेरी......मैं जानता हूँ......मैं जानता हूँ ......उनके साथ ही पढ़ती थी। बहुत दिनों से उसके साथ प्रेम था उनका। हमारे 'कल्चरल-क्लब' में तो यह खबर गर्म थी कि उनकी सिविल मैरेज होने वाली है। लेकिन इससे पहले कि वे कुछ कर पाते, पिता जी वहाँ राज की सगाई कर आये।

रानी : तुमने पिता जी से उसी वक्त क्यों न कहा ?

पूरन : मैंने उसी दिन कहा था कि आप प्रोफेसर मदन को देख कर उनके पिता से बातचीत पक्की कर आये, स्वयं उनसे भी तो मिलिए, उनके विचारों को भी तो जानिए। आपने अपनी ओर से पढ़ा लिखा, भला, कमाऊ लड़का ढूंढ़ लिया, यह भी जाना कि वह क्या चाहता है ? लेकिन मुझे तो वे सिर-फिरा और आवारागर्द समझते हैं। मेरी बात पर उन्होंने ज़रा भी कान न दिया (**कुछ क्षण चुपचाप घूमता है, फिर जैसे आन्तरिक झुंझलाहट से**) एक दिन चाचा वृन्दाबन से अपनी कार-गुज़ारी की दाद चाह रहे थे (**चिड़चिड़ाहट भरे स्वर में लगभग नकल उतारते हुए**) "मैं लड़के के पिता से मिला हूँ, बड़े सज्जन हैं, अहंकार उनमें नाम को भी नहीं। भेंट हुई तो कहने लगे, मैं तो आपको पाकर धन्य हो जाऊँगा।" मैं भी पास ही खड़ा था, मैंने कहा—"आपने उनकी इच्छा तो जान ली। उनके लड़के की इच्छा भी तो जानिए। वह भी आपकी लड़की को पाकर धन्य होगा या नहीं ?"

राज : (**दुर्बल स्वर में**) क्यों, मुझमें क्या दोष है, क्या मैं

उनकी हमदर्द नहीं ? मुझसे बढ़कर उनका हमदर्द कौन होगा ?

पूरन : किन्तु शायद तुम उनकी हमख़याल नहीं !

राज : मैंने उनकी आधी बात भी कभी नहीं काटी।

पूरन : बात—बात काटने की नहीं। वे प्रोफेसर हैं, और वह एम० ए० है। दोनों एक दूसरे के स्वभाव को, एक दूसरे की आवश्यकताओं को समझते होंगे। तुम शायद उन्हें नहीं समझ सकतीं और वे भी शायद तुम्हें नहीं समझ सकते। मैंने पिता जी से यही कहा था—"आपने राजो को उचित शिक्षा नहीं दी और उसके सबसे बड़े गुण ये हैं कि वह अच्छा खाना पका सकती है और घर का काम बड़ी कुशलता और मितव्ययता से चला सकती है। कहीं ऐसा न हो कि उसके यही गुण वहाँ जाकर अवगुण बन जायँ ! लेकिन उन्होंने मुझे डाँट दिया। कहने लगे—"तुम्हें पढ़ाकर मैं बड़ा सुखी हो गया हूँ, जो अब लड़कियों को पढ़ाऊँगा।" मैंने कहा—"तब इसका ब्याह इतने पढ़े-लिखे से न कीजिए।" कहने लगे—"तू मेरा बेटा है या बाप ?" (कटु व्यंग्य से) जैसे उनके बाप होने से मेरी बात ग़लत हो गयी।

रानी : तुमने यह नहीं कहा कि वे दूसरी जगह शादी करना चाहते हैं ?

पूरन : मैंने कहा था। लेकिन वे बोले कि अच्छे लड़कों के बारे में ऐसी बातें लोग सदा उड़ाया करते हैं। यहाँ जोड़ने वाले दो हैं तो तोड़ने वाले चार। जब मैंने नाम-पता बताया, तो गरजे कि पंडित उदयशंकर का लड़का अपनी

जाति के बाहर कभी शादी नहीं कर सकता। अब वे ठहरे पुराने ख़याल के अनपढ़ आदमी, मैं उनसे कहाँ तक माथा फोड़ता। बहुतेरा ज़ोर लगाया, पर उन्होंने एक न सुनी। कहने लगे कि बातें करना जानता है, बहिन के लिए लड़का ढूंढ़ना पड़े, तो पता चले। मैंने कहा, 'कुछ दिन रुकिए, मैं बहुत अच्छा लड़का ढूंढ़ दूंगा।' बोले—"ढूंढ़ लेगा अपनी तरह का निकम्मा और आवारा!"

रानी : पिता जी तो अनपढ़ और पुराने ख़याल के हैं, प्रोफेसर मदन तो नहीं। पिता जी की भूल तो साफ़ ज़ाहिर है, लेकिन क्या प्रोफेसर मदन की कोई भूल नहीं? उन्हें क्या नहीं सोचना चाहिए था और फिर उन दोनों की गलतियों में राज बेचारी क्या करे? आखिर इसका क्या दोष है?

पूरन : (कटुता से) वही जो तुम्हारा......

रानी : मेरा?

पूरन : वकील साहब ने तुम्हें छोड़ दिया, क्योंकि पिता जी ने दहेज में मकान और मोटर नहीं दी, लेकिन इसमें तुम्हारा क्या दोष है? पर जैसा कि मैंने तुमसे कहा, इस देश में पुरुष कभी गलती नहीं करता, उसका कभी दोष नहीं होता यहाँ सिर्फ नारी गलती करती है। उसी का दोष होता है और नारी का दोष उस निरीह गाय के दोष जैसा है, जिसको, उससे पूछे बिना, उसकी इच्छा जाने बिना, कसाई के हाथ में सौंप दिया जाय। वह कसाई उसे एक झटके में मार दे या तिल-

तिल कर जिबह करे, भूखा मारे या चारे के भरे थान पर बाँध दे !

राज : लेकिन वे तो कसाई नहीं, वे तो एक चींटी तक को मारना पाप समझते हैं ।

पूरन : लेकिन पाँच हाथ की लड़की को बिना किसी संकोच के तिल-तिल कर मार सकते हैं ।

राज : यह तो मेरी किस्मत है, भैया ।

पूरन : (**झल्लाकर उठ खड़ा होता है।**) किस्मत .....किस्मत ......किस्मत ......! किस्मत क्या तुम्हीं लोगों के लिए रह गयी है ? वकील साहब या प्रोफेसर मदन के लिए उसके तरकश में कोई तीर नहीं ? (**सव्यंग्य**) लेकिन पुरुष के भाग्य के गुण तो ऋषियों ने भी गाये हैं, उसकी थाह तो देवता भी नहीं पाते । वह चाहे तो तीन-तीन शादियाँ करे और तीनों को कष्ट दे-देकर मार डाले; चाहे तो बिना कारण बीवी को छोड़ दे या न छोड़े; रखे या न रखे; चाहे तो बुड्ढा होते हुए भी जवान लड़की से शादी कर ले; अपंग और अधमरा होते हुए भी सुन्दर और स्वस्थ लड़की ब्याह लाये...पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति...लेकिन तुम्हें बताया है न, रानो, दूसरे देशों में स्त्रियों ने भगवान के हाथ से अपना भाग्य छीन लिया है । उन्होंने अपने अहम् को, अपनी खुदी को इतना बुलन्द कर लिया है कि उनके भाग्य को बनाने के पहले भगवान को उनसे पूछना पड़ता है । तुम लोग भी यदि अपने भाग्य को खुद अपने हाथ में न लोगी तो जिन्दगी भर तिल-तिल कर जलती रहोगी ।

रानी : तुम एक बार जाकर प्रोफेसर मदन से पूछो तो पूरन। वे तो वकील साहब-जैसे निर्दयी और स्वार्थी नहीं! राजो की ज़िन्दगी तबाह करने का उन्हें क्या अधिकार है?

पूरन : (**कटुता से**) यहाँ के पुरुष का यह जन्म-सिद्ध अधिकार है, और स्त्री वही पतिव्रता है, स्वर्ग की अधिकारिणी है, जो पुरुष के इस अधिकार के विरुद्ध सपने में भी आवाज़ उठाने की न सोचे। (**कुछ क्षण चुपचाप कमरे में घूमता है।**) मुझे डर था, राजो का जीवन सुखी न होगा। डर था, कहीं प्रोफ़ेसर मदन शादी न कर लें! (**कुछ क्षण चुपचाप घूमता है**) शादी से पहले मेरा और उनका अच्छा परिचय था, शादी के बाद वह गहरी दोस्ती में बदल जाना चाहिए था। लेकिन ऊपरी शिष्टाचार चाहे और भी बढ़ गया, मैं उनके निकट नहीं जा सका। (**कुछ क्षण चुपचाप घूमता है**) फिर मैंने देखा कि वे मेरी शकल तक से घबराते हैं, तब मेरा माथा ठनका था और मैंने पिता जी को इशारे से कहा था, लेकिन उनका ख़याल था कि प्रोफेसर मदन की उपेक्षा का कारण मेरी आवारागर्दी है। (**दर्द से हँसता है।**) मैं जाऊँगा ज़रूर, लेकिन जब वे दूसरी जगह शादी कर रहे हैं तो कहने-सुनने से लाभ? फिर जो एक-आध प्रतिशत चाँस रह गया होगा, उसे पिता जी बिगाड़ देंगे। दिल के मामले में ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं चला करती, न ही पैसे का लोभ-लालच वहाँ ठहरता है। और पिता जी दोनों के अतिरिक्त किसी तीसरी बात में विश्वास नहीं रखते। वकील साहब पैसे के लोभ में तुम्हें ले जा

सकते हैं, लेकिन प्रोफेसर मदन पर लोभ-लालच का कोई असर नहीं हो सकता।

[चुपचाप खिड़की में जाकर बाग के शून्य में देखने लगता है, कमरे में दर्द-भरा सन्नाटा छाया रहता है।]

पूरन : (कुछ चौंककर) अरे, यह क्या वकील साहब आ रहे हैं ?

राज : (तख्त पर सहसा उठते हुए) त्रिलोक जीजा जी ?

रानी : साथ कौन है, वृन्दाबन चाचा ?

पूरन : नहीं, कोई उनका दोस्त लगता है।

राज : ज़रूर जीजी को लेने आये हैं। पिता जी बहुत दिनों से कोशिश कर रहे थे।

रानी : पूरन, उन्हें दरवाज़े से लौटा दो, मैं नहीं जाऊँगी !

पूरन : तुम लोग अन्दर चलो, मैं देखता हूँ।

रानी : चलो, राज।

राज : क्या करती हो जीजी ? यहाँ मान-अपमान नहीं चलता।

रानी : चलता है ! तू चल, अन्दर चलें !

[उसे सहारा देकर अन्दर ले जाती है, पूरन कौच में धँस जाता है और बेपरवाही से समाचार-पत्र उठा लेता है। तभी कॉल-बेल बजती है। वह उठ कर बाहर जाता है। कुछ क्षण बाद पूरन के आगे-आगे त्रिलोक प्रवेश करता है। पूरन के माथे पर चिड़चिड़ाहट के आसार और भी बढ़ गये हैं। प्रकट है कि उसने त्रिलोक का

स्वागत नहीं किया, पर त्रिलोक उसके स्वागत की परवाह किये बिना अन्दर चला आया है।]

त्रिलोक : (**खोखली-सी हँसी के साथ**) बड़े तीर-कमान चढ़ा रक्खे हैं माथे पर, किसी से लड़ के बैठे हो ? (**आकर कौच में धँस जाता है।**) पिता जी और रानो तो सब ठीक हैं न ?

पूरन : आप अपनी कहिए वकील साहब, कैसे कष्ट किया ?

[**सामने कौच के बाजू का सहारा लेकर खड़ा हो जाता है।**]

त्रिलोक : (**खोखला-सा ठहाका लगाते हुए**) एक ही साल में भूल गये हमें ? न जीजा जी, न भाई साहब...वकील साहब ! (**फिर हँसता है।**) मैंने कहा न, कि तुम ज़रूर किसी से लड़ के बैठे हो।

पूरन : एक ही शहर में रहते हुए और इतने निकट होते हुए जब आप भूल सकते हैं तो हमारी याद से क्यों शिकायत करते हैं। कहिए, कैसे कृपा की ?

त्रिलोक : रानो कहाँ है ?

पूरन : कहिए ?

त्रिलोक : तुम तो भाई लड़ते हो।

(**पूरन कोई उत्तर नहीं देता।**)

— : आज इतवार था, मैंने सोचा कि पिता जी से और आप लोगों से मिलता आऊँ।

पूरन : (**सव्यंग्य**) बड़ी कृपा की ! पर साल में तो बावन इतवार आते हैं।

त्रिलोक : (गम्भीरता से) मैं तो बहुत दिनों से आने की सोच रहा था, लेकिन एक तो काम बढ़ गया है, दूसरे माता जी की तबीयत कुछ गड़बड़ हो गयी। वे ठीक हुईं तो आशा को बुखार आ गया। उसकी हालत सुधरी तो पिता जी और बड़े भाई पड़ गये। कचहरी, मुवक्किल, डाक्टर, कम्पाउण्डर, बस इसी चक्कर में रहा।

पूरन : (व्यंग्य से हँसते हुए) आपने नाहक यहाँ आने की सोची !

त्रिलोक : क्या मतलब ?

पूरन : (उसी तरह हँसते हुए) न आप यहाँ आने की सोचते, न आपका घर अस्पताल बनता।

त्रिलोक : (खिन्नता से हँसते हुए) नहीं-नहीं, यह बात नहीं। मौसम बदल रहा है, सारा शहर बीमार पड़ा है, हमारे घर में तो अब भी चार आदमी पड़े हैं। मँझली भाभी और बड़े भाई के लड़के और......

पूरन : बड़ी बाधाओं को पार करके आये आप यहाँ, कैसे आपको धन्यवाद दें !

[दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं। त्रिलोक समझ नहीं पाता कि पूरन गुस्से में है अथवा यों ही, उसका टखना खींच रहा है और वह स्वयं गुस्सा हो या हँसे]

— : आपको यहाँ आने के बदले बीमारों की तीमारदारी करनी चाहिए थी !

त्रिलोक : (**उसके व्यंग्य को समझते, लेकिन नज़र-अन्दाज़ करते हुए कढ़े हँसकर**) अरे भाई, ज्वाइंट फेमिली में जो आदमी तीमारदारी पर रहता है, वह फिर और कोई काम नहीं कर पाता। रानो जब से आयी, न उसने कोई ख़बर दी और न मैं ही आ सका, आज सोचा पता करूँ, बात क्या है ?

(**पूरन कोई उत्तर नहीं देता।**)

— : (**उठ कर कमरे में घूमते और हाथ धोने के अन्दाज़ में हाथ मलते हुए**) जिन घरों में माँ-बाप, भाई-भाई, देवरानियाँ-जेठानियाँ और ननदें-भौजाइयाँ इकट्ठी रहती हैं, वहाँ, तुम जानो, एक न एक झगड़ा-टंटा लगा ही रहता है—इसने कुछ उसे कह दिया, उसने कुछ इसे कह दिया; सास ने बहू को बोली मारी, बहू ने सास को ताना दिया; देवरानी जेठानी से रूठी, ननद भौजाई की बात का बुरा मान गयी—आठों पहर और चौबीसों घड़ी प्लासी की लड़ाई ठनी रहती है। बड़ा सबर और सन्तोष चाहिए ज्वाइंट फेमिली में गुज़ारा करने को। रानो बड़ी हस्सास और भाव-प्रवण है, ज़रा-सी बात उसे लग जाती है। पिछली बार वह कुछ रूठ-कर आ गयी थी, मैंने भी सोचा कि जब तक एक ही घर में इकट्ठे रहना है, रोज़ की चख़चख़ में उसे क्या लाकर रक्खू। (**धीमे भेद-भरे स्वर में**) लेकिन अब मैं अलग होने की सोच रहा हूँ।

पूरन : (**व्यंग्य को मुस्कान में छिपाते हुए**) बड़ी कुर्बानी करने जा रहे हैं रानो की ख़ातिर आप !

त्रिलोक : (यह सोचकर कि वह बात बनाने में सफल हो रहा है, कड़े ज़ोर से) नहीं यह बात नहीं ! जिस दिन से हमारी शादी हुई है, मैं इस बात को महसूस कर रहा हूँ । आज का कौन युवक नहीं चाहता कि अपनी बीवी को साथ लेकर चन्द दिन आज़ादी से रहे; जब चाहे उठे, सैर को जाय, ताश खेले या सिनेमा देखे, लेकिन गर्दन तक दलदल में धँसे आदमी को बाहर निकलने के लिए उतना ज़ोर नहीं लगाना पड़ता, जितना ज्वाइंट फेमिली के कीचड़ में टखनों तक धँसे आदमी को। वह एक बाधा को पैर से झटक कर बढ़ता है कि दस बाधाएँ उसके दूसरे पैर से चिमट जाती हैं। ज्वाइंट फेमिली का दुर्ग कम दुर्गम नहीं भाई, मां-बाप के एहसान, भाई-बहनों की मुहब्बत, कुल की लाज, पुरखों का नाम, गत की महत्ता और आगत की सम्मिलित-शक्ति के सपने—न जाने कितनी दीवारें ज्वाइंट फेमिली की चारदीवारी को तोड़ भागने वाले के रास्ते में आ खड़ी होती हैं।

पूरन : ज्वाइंट फेमिली से निकलने के ही लाभ नहीं, रहने के भी बड़े लाभ हैं वकील साहब। यह ठीक है कि कई भावुक इसके ठूंठ को व्यर्थ ही पानी दिया करते हैं, लेकिन जहाँ पेड़ हरा भरा और छायादार है, वहाँ कई बेकार युवक, छोटे-मोटे क्लर्क, और महत्त्वाकांक्षी नये वकील इसकी छाया का आनन्द लेते हैं।

त्रिलोक : (सहसा मुड़कर) नये वकील ......तो यह व्यंग्य मुझ पर है !

पूरन : नहीं, आप तो पेड़ की छाया में रहकर बड़ा त्याग कर

रहे थे, और अब उसे छोड़ रहे हैं तो बड़ा त्याग कर रहे हैं—आप साक्षात त्याग के अवतार हैं ।

त्रिलोक : (**जिसके सन्तोष का प्याला भर जाता है, सहसा मुड़कर**) नहीं, त्याग तो तुम कर रहे हो, हम क्या करेंगे ! म्यां तुम अपनी ज़िन्दगी के मानदंड से दूसरों को नापते हो। मैं यदि पेड़ के फल खाता हूँ तो उसे दो बाल्टी पानी भी देने का प्रयास करता हूँ । तुम फल खाते हो और उसकी जड़ को खोखला करते हो । मेरे बाप को मुझ से शिकायत हो सकती है, पर वे मेरी प्रशंसा भी करते हैं । कभी अपने बाप से अपने बारे में भी कुछ पूछा है ? ज़रा अपनी शक्ल तो आइने में देखो ! क्या राय साहब ताराचन्द के सुपुत्र लगते हो ? कचहरी में कहीं मिल जाओ तो मित्रों से कहना मुश्किल हो जाय कि तुम मेरे साले हो। शरीफ़ आदमियों में बैठो तो लोग अपनी जेबों पर हाथ रख लें।

पूरन : (**हँसकर**) मेरी बात छोड़िए वकील साहब, लेकिन आप पानी देते-देते क्या थक गये, जो अब पेड़ को छोड़ कर भागना चाहते हैं ?

त्रिलोक : (**क्रोध से**) तुम से बात करना बेकार है ! तुम्हारा न कोई धर्म है न ईमान । तुम्हारे दिल में न छोटों के लिए स्नेह है, न बड़ों के लिए इज्ज़त। बात करने की तुम्हें तमीज़ नहीं । आवारा लोगों की संगत ने तुम्हें बिल्कुल आवारा बना दिया है । तुम एक दिन जेल में जाकर अपने बाप का नाम रौशन करोगे, मैं आज यह भविष्यवाणी करता हूँ ।

[**उछलता हुआ कौच पर बैठता है। लेकिन जैसे वहाँ काँटे बिखरे हों, फिर उछलकर उठता है।**]

— : तुम रानो को भेजो !

पूरन : (**उसकी बात अनसुनी करके**) और मैं भविष्यवाणी करता हूं कि आप एक दिन, यदि इसी तरह धर्म ईमान का खयाल रखते और निःस्वार्थ अपने कर्तव्य का पालन करते रहे तो निश्चय ही दलालों और अपनी वकील-सुलभ-चतुराई और झूठ की मदद से, शहर ही नहीं, प्रान्त के प्रसिद्ध एडवोकेट बनेंगे। कोई बड़ी बात नहीं यदि आप एक दिन जज की कुर्सी पर जा बैठें (**सहसा मुड़ कर**) लेकिन इस वक्त आप तशरीफ़ ले जाइए, राजो की तबीयत ठीक नहीं और रानो उस की तीमारदारी कर रही है।

त्रिलोक : (**सहसा उठकर और अन्दर जाने को उद्यत होते हुए**) क्या राजो की तबीयत खराब है ? कहाँ है वह ? चलो तो......

पूरन : (**उसका रास्ता रोककर**) आप कष्ट न कीजिए, वह आपसे मिलने की स्थिति में नहीं है।

त्रिलोक : (**हताश होकर कुर्सी में धँसते हुए**) पिता जी कहाँ हैं ?

पूरन : आपके हमजुल्फ़[1] की मिजाज-पुरसी[2] को गये हुए हैं।

---

१. **हमजुल्फ—साली का पति—साढ़ू**

२. **मिजाज-पुर्सी—बीमार की खबर लेना। लेकिन इसका दूसरा मतलब पीटना भी है।**

त्रिलोक : (**घबराकर उठते हुए**) क्यों, प्रोफ़ेसर मदन को क्या हुआ ?

पूरन : आप ने अभी कहा न, मौसिम बदल रहा है, घर-घर बीमारी पड़ी हुई है ! अच्छा तो मुझे आज्ञा दीजिए ।

त्रिलोक : तुम ज़रा रानो को एक मिनट के लिए भेज दो, मुझे उससे ज़रूरी बात करनी है ।

पूरन : रानो नहीं आ सकती ।

त्रिलोक : तुम जाकर कहो तो, मुझे बड़ी ज़रूरी बात करनी है उससे । दस काम छोड़ कर मैं आया हूँ ।

पूरन : मैं तो समझा था कि इतवार के कारण आप केवल दर्शन ही करने आये हैं ।

त्रिलोक : (**सक्रोध**) पूरन !

पूरन : (**उसकी आवाज़ की थरथराहट और उसकी आँखों की लपलपाहट की ओर ध्यान दिये बिना**) अभी भरा नहीं मन आपका रानो से ज़रूरी बातें करते ?

त्रिलोक : वह मेरी बीवी है और अपनी बीवी से......

पूरन : बीवी थी ।

त्रिलोक : क्या बकते हो !

पूरन : मैं ठीक अर्ज़ करता हूँ !

त्रिलोक : (**सहसा घबराकर**) और...और किस की बीवी है वह ? ...किस से शादी की है उसने ? .. किस से शादी कर रही है वह.....हिन्दू कानून में दूसरी शादी.....मैं पूछता हूँ, पिता जी ने कैसे......वृन्दाबन कहते थे......

पूरन : (**चुपचाप त्रिलोक की घबराहट को देखता है और मुस्कराता है ।**)

त्रिलोक : (**कुछ क्षण पूरन की ओर देखकर सहसा आश्वस्त होकर हँसते हुए**) तुम मुझ से हँसी करते हो पूरन । जाओ रानो को भेजो । तुम नहीं जानते तुम ने अपनी बहिन के सम्बन्ध में क्या बात कह दी है । हिन्दू नारी सपने में भी वैसी बात नहीं सुन सकती ।

पूरन : सपने में भी ! (**व्यंग्य से हँसता है ।**) शायद आप हिन्दू नारी के सपने भी जानते हैं । क्योंकि उसकी कोमल भावनाओं को एक्स्प्लाइट (Exploit) करने* के लिए युग-युग से उसे जो पाठ पढ़ाया गया है, वह आपका जाना-माना है और आप समझते हैं कि आप चाहे जो अत्याचार करें, वह सती की रस्म बन्द होने के बावजूद सती; पुरुषों के साधुता छोड़ देने पर भी साध्वी और पति के कर्तव्य-च्युत होने के बावजूद पति-व्रता बनी रहेगी । लेकिन वकील साहब, आज हिन्दू नारी बदल रही है, हिन्दू मुसलमान क्या, भारत की नारी-मात्र बदल रही है, उसके सपने बदल रहे हैं, आप आज की नारी के सपने तो क्या, उसकी भावनाओं को भी नहीं समझते !

त्रिलोक : तो यह आग तुम्हारी लगायी है ! मैं न समझता था कि रानो में उतनी तुनक-मिज़ाजी क्यों है, क्यों वह नाक पर मक्खी नहीं बैठने देती और घर में ज़रा झगड़ा होता है तो मैके उठ भागती है । जहाँ चार बरतन

***एक्स्प्लाइट करने = अनुचित लाभ उठाने ।**

होते हैं, ज़रूर खनकते हैं; जहाँ चार औरतें होती हैं ज़रूर लड़ती हैं। कौन सा घर है जिसकी औरतों में ताने-तिश्ने, लड़ाई-झगड़ा, मान-मनौवल नहीं होता ? लेकिन दर्द के डर से कोई नाक-कान तो बिंधवाना नहीं छोड़ देती।

पूरन : लेकिन नाक कान बिंधवाना क्या ज़रूरी है ? औरत पशु के दर्जे को पार कर गयी है और इसलिए यदि नुकेल के लिए नाक कान नहीं बिंधवाना चाहती तो क्या बुरा करती है ? बेकार का दर्द वह क्यों पाले ?

त्रिलोक : यह दर्द बेकार का नहीं, इस पर हमारी गृहस्थी कायम है। अब तो खैर हमारे घर में बड़ी आज़ादी है, पर जब मेरी माँ आयी थीं तब......आज हम बात भी करते हैं तो हमारी ज़बान खींची जाती है, मेरी दादी तो माता जी को बेतरह पीट देती थीं और पिता जी उन्हें रोकने के बदले एक-आध थप्पड़ माता जी के ही जड़ देते थे। यदि वे रानो की तरह घर छोड़ने लगतीं तो चल चुकती पिता जी की गृहस्थी। पर यह उनके सबर-सन्तोष का फल है कि आज हमारा घराना शहर के प्रतिष्ठित घरानों में समझा जाता है।

पूरन : तो रानो को पीटने की हसरत रह गयी आपको !

त्रिलोक : मुझे पीटने की हसरत क्या होती ! वह तो बात से बात निकल आयी। मैं बच्चा नहीं, जो यह न समझूं कि पिता जी के और हमारे ज़माने में फ़र्क है। मेरा बस चले तो रानो को एक बात भी न सुननी पड़े। उसकी भावनाओं को ज़रा सी भी ठेस न लगे, लेकिन कई बार

जब घर में झगड़ा हो जाता है तो बीवी के कारण माँ को और माँ के कारण बीवी को चार बातें सुननी पड़ती हैं। गुस्सा बीवी पर होता है, निकलता है माँ पर। इसी तरह माँ का गुस्सा अनचाहे बीवी पर निकल जाता है। बहुएँ समझदार होती हैं तो बात का बतंगड़ नहीं बनातीं और चुपचाप अपने काम में लगी रहती हैं। मैं रानो से यही बात कहने आया था कि......

पूरन : रानो यह बात पहले भी सुन चुकी है।

त्रिलोक : लेकिन मैं तो इस सबका झगड़ा ही निबटा रहा हूँ मैंने फैसला कर लिया है कि कचहरी रोड पर एक फ्लैट लेकर रानो को वहाँ रक्खूं—न सास ननद का झगड़ा, न देवरानी जेठानी का टण्टा, न रहे बांस न बजे बाँसुरी।

पूरन : रानो को तो सास ननद से नहीं, आपसे शिकायत रही है। अब वह सारी गाथा यहाँ क्या गायी जाय।

त्रिलोक : उसको महज़ भ्रम है। मैं उसकी जितनी इज्ज़त करता हूँ, किसी की नहीं करता, फ़साद की जड़ तो ज्वाइंट फेमिली है।

पूरन : लेकिन रानो ने फैसला कर लिया है कि वह आपको यह सब कष्ट न देगी। आप अपनी ज़िन्दगी जियें, वह अपनी जियेगी। यही बात आपने उससे कही भी थी।

त्रिलोक : गुस्से में कही गयी बात का......

पूरन : आप थूका चाट सकते हैं, हम नहीं......

त्रिलोक : हम कौन ? पिता जी ने तो मुझे दस संदेश भेजे हैं कि

रानो उदास है, मैं उसे ले जाऊँ ! तुम तो ऐसी बात करते हो जैसे रानो तुम्हारी बहिन नहीं, बेटी है ।

पूरन : छोटी बहनें बेटियों के बराबर होती हैं ।

त्रिलोक : लेकिन पिता जी से ज्यादा तुम उसे प्यार करते हो ?

पूरन : हाँ, क्योंकि वह उनकी बेटी है और मेरी छोटी बहिन ।

त्रिलोक : (**क्रोध और व्यंग्य से**) 'खुद मियाँ फ़ज़ीहत, दीगराँ नसीहत', अरे भाई, खुद किसी लायक हो लो, फिर दूसरे की ज़िन्दगी में टाँग अड़ाओ ।

पूरन : आपके घर ज़िन्दगी सुधारने न जायेंगे, इसका विश्वास रखिए ।

त्रिलोक : (**क्रोध से चिल्लाकर**) लेकिन तुम होते कौन हो हमारे बीच पड़ने वाले ? मैं रानो को लेने आया हूँ । बिना उसे लिये नहीं जाऊँगा ।

पूरन : (**सव्यंग्य**) अच्छा तो आप रानो को लेने आये हैं, मैं तो समझा था ......

त्रिलोक : (**और भी ज़ोर से चिल्लाकर**) हटाओ जी, मैं खुद रानो से बात करूँगा ।

(**चिल्लाता हुआ खुद अन्दर की तरफ़ जाता है ।**)

त्रिलोक : रानो, रानो !

(**रानो प्रवेश करती है ।**)

रानी : (**क्रोध से लेकिन संयम भरे स्वर में**) आप चिल्ला रहे हैं ? राजो की तबीयत ठीक नहीं ।

त्रिलोक : मैं आध घंटे से पूरन को समझा रहा हूँ, लेकिन......

पूरन : मैं वकील साहब से अर्ज़ कर रहा था कि आप ने व्यर्थ कष्ट किया........

रानी : अच्छा-अच्छा, शोर न मचाइए। राजो की तबियत ठीक नहीं, कुछ ही देर पहले वह बेहोश हो गयी थी।

त्रिलोक : क्यों-क्यों, क्या हुआ राजो को ?

रानी : उसकी छोड़िए, आप कहिए, कैसे कष्ट किया ?

पूरन : साल भर में ईद का चाँद निकलता है न, सो वकील साहब भी उसी ईद के चाँद सरीखे उदय हुए हैं।

त्रिलोक : मैं पहले कैसे आता ? जिस हालत में तुम आने को मजबूर हुई थीं, उसी में तुम्हें फिर क्या ले जा कर रखता ? साल भर तक हालत सुधारने की कोशिश करता रहा।

रानी : हालत सुधारने की ? कैसी हालत ?

त्रिलोक : अब तुम्हें न सास के ताने सुनने पड़ेंगे, न ननद के, न देवरानी के, न जेठानी के......

रानी : लेकिन आप के ताने ? अपने मन की स्थिति आप कैसे सुधारेंगे ?

त्रिलोक : मैं उस वातावरण से निकल जाऊँगा।

रानी : (तिक्त हँसी के साथ) और उस वातावरण से निकल आने के साथ, मेरे बारे में आपको जो शिकायतें हैं, वे दूर हो जायेंगी ! (**कटुता से हँसती है**) वातावरण आपका बदलेगा, अच्छी मैं हो जाऊँगी !

त्रिलोक : तुमने मुझे कभी नहीं समझा, रानो। मुझे तुम से कभी शिकायत नहीं रही।

रानी : कभी नहीं रही ? मैंने तो सिवा शिकायतों के अपने लिए आप से कुछ और पाया ही नहीं !

त्रिलोक : वे शिकायतें तो रोज़-रोज़ की चख़चख़ की नतीजा थीं जो घर में आठों पहर मची रहती थी ।

रानी : मेरे कारण ?

त्रिलोक : अरे नहीं, नहीं, नहीं, तुम्हारे कारण क्यों ?......तुम्हारे कारण क्यों ? मैंने कब कहा कि तुम्हारे कारण ! वह बात यह है......मैं पूरन से कह रहा था अभी कि ज्वाइंट फेमिली में वातावरण कुछ ऐसा दूषित रहता है है कि अच्छा भला आदमी पागल हो जाता है । माँ की ख़ातिर तुम पर और तुम्हारी ख़ातिर कई बार माँ पर झुंझला उठता था ।

रानी : मैंने तो कभी माँ पर आपको झुंझलाते नहीं देखा । माँ को खुश करने के लिए मुझ पर अलबत्ता आप सदा झुंझलाते रहे ।

त्रिलोक : तुम्हारे सामने नहीं, लेकिन......

पूरन : और माँ ही को खुश करने के लिए आप ने इस को घर से निकाल दिया ?

त्रिलोक : निकाल दिया ? यह तो स्वयं आ गयी ।

पूरन : आने को मजबूर हुई ।

त्रिलोक : ज्वाइंट फेमिली का वातावरण ही ऐसा होता है कि हस्सास और भावुक के लिए वहाँ चार दिन भी रहना मुश्किल है । रानो कितनी भावुक है, मैं जानता हूँ । मेरा

यदि कोई दोष है तो यह कि जब यह आने लगी तो मैंने रोका नहीं ।

पूरन : निहायत बेदर्दी से नौकरानी के साथ भिजवा दिया । भाई बहिनों वाले इतने बड़े घर में केवल एक नौकरानी के साथ !

त्रिलोक : मैं तो स्वयं आता । पर इसे मेरी शकल से चिढ़ थी ।

रानी : (**तिक्त हँसी के साथ**) मुझे आपकी शकल से चिढ़ थी या आपको मेरी शकल से ?

त्रिलोक : (**खोखली हँसी के साथ**) अब मैं कहता हूँ रानो, कि यहीं तुम गलती करती हो । तुम नहीं जानतीं, मैं तुम्हारी कितनी इज्ज़त करता हूँ ।

रानी : (**उसी तिक्त मुस्कान से**) इज्ज़त ?

त्रिलोक : हाँ, हाँ, इज्ज़त ! मैं दिल में हमेशा तुम्हारी इज्ज़त करता रहा हूँ, यह अलग बात है कि घर वालों के कारण तुम्हें ताने देने को विवश हो जाता था ।

पूरन : (**सव्यंग्य**) वे ताने तुम्हारे लिए नहीं, वे तो माँ, भाभियों या बहनों के लिए थे ।

त्रिलोक : (**अपनी रौ में पूरन के व्यंग्य की ओर ध्यान दिये बिना**) यही तो मैं कह रहा था । कई बार ऐसा होता है कि माँ बच्चे को पीटती है, पिता इसे पसन्द नहीं करता, लेकिन बीवी से कुछ कहने के बदले उसके सिर चढ़ कर खुद भी बच्चे को दो चार झाँपड़ लगा देता है । मेरी बेबसी भी कुछ वैसी ही थी ।

[**अपने पति के इस झूठ पर क्षण भर के लिए क्रोध से**

रानो के तेवर चढ़ जाते हैं, पर दूसरे क्षण उसकी आंखें पूरन से चार होती हैं, जो अपने जीजा के इस झूठ पर हँस रहा है । सहसा रानो भी क्रोध के बदले मुस्करा उठती है, पर तत्काल इस व्यंग्य-भरी-मुस्कान को छिपा लेती है ।]

रानी : (बड़े भोले अन्दाज में) मैं हैरान हूँ, यह बात पहले मेरी समझ में क्यों नहीं आयी !

त्रिलोक : (किञ्चित उल्लास से) यही तो मैं कहता हूँ । तुमने मेरी बेबसी को कभी नहीं समझा । जब मैं चिल्ला-चिल्ला कर तुम्हें डाँटता था, तुम्हें ताने देता था तो मैं दर-असल अपनी माँ, भाभियों और बहनों को डाँटता था—अनचाहे अपने बच्चे को पीटने वाले पिता की तरह मैं उन सबका गुस्सा तुम पर निकालता था । मुझे दुख होता था कि वे तुम्हें क्यों दहेज की कमी, या नजाकत, या नफ़ासत के ताने देती हैं ।

रानी : (और भी भोलेपन से ओठों पर आती तिक्त मुस्कान को छिपाते हुए) मैंने कभी यह नहीं समझा । आप ने मुझे कभी नहीं बताया ।

पूरन : तुम नहीं जानतीं, कैसे माएँ बहुओं को समझाने के लिए अपनी लड़कियों को डाँटा करती हैं । वही बात वकील साहब की है । ये माँ बहनों को समझाने के लिए तुम्हें डाँटा करते थे ।।

त्रिलोक : तुम मजाक करते हो पूरन । लेकिन बात तुमने ठीक कही है । मेरी स्थिति बिल्कुल ऐसी ही है ।

रानी : (उसी अन्दाज में) पर मैं कैसे जानती ? आपने

भी तो मुझे कभी नहीं समझाया, कभी अपने दिल की बात नहीं बतायी, कभी नहीं कहा कि......

त्रिलोक : (**और भी जोश से**) अब मैं तुमसे क्या कहता, क्या समझाता ? मैं खुद अपने-आप पर झुंझलाता था, घर के वातावरण पर झुंझलाता था, झुंझलाता था कि यदि उन्हें दहेज उतना प्यारा था तो क्यों पहले उन्होंने राय साहब से तय नहीं किया......

पूरन : और आप उन्हें समझाने के बदले रानो को वही दहेज की कमी के ताने देते थे ! रानो पर ही अपनी झुंझलाहट निकालते थे !

त्रिलोक : (**अप्रतिभ हुए बिना**) रानो पर ही....क्योंकि रानो को मैं अपने से विलग नहीं समझता। रानो पर मेरा झुंझलाना स्वयं अपने आप पर झुंझलाना था ।

पूरन : (**ज़ोर से ठहाका मारते हुए**) आप ज़रूर एक दिन हाईकोर्ट में अपनी धाक जमायेंगे । बिगड़ी बात बनाना आप खूब जानते हैं ।

त्रिलोक : बात बिगड़ी बनाने की नहीं, मैं यथार्थ स्थिति की बात कर रहा हूँ ।

रानी : (**उसी भोले स्वर में**) आपने क्यों न मुझे वहाँ समझा दिया ? मैं साल भर यहाँ जलती-भुनती रही । यदि मुझे इस बात का पता चल जाता तो मैं सबके ताने सह लेती और सबर-सन्तोष से दिन काट लेती ।

त्रिलोक : मैं हरगिज़-हरगिज़ न चाहता था कि तुम उस दूषित वातावरण में रहो । मैंने इसीलिए तुमसे वहाँ कुछ नहीं कहा ।

[इस बात को सुनकर रानो के माथे पर फिर बल पड़ जाते हैं, पर वह बड़े यत्न से अपने क्रोध को दबा कर स्वर को और भी भोला, और भी अनजान बना लेती है।]

रानी : अब मैं वहाँ गयी तो कभी न झुंझलाऊँगी।

त्रिलोक : तुम्हें वहाँ जाने की बिलकुल जरूरत नहीं, मैंने अलग रहने का फैसला कर लिया है।

पूरन : वकील साहब तो पेड़ को पानी देते-देते ऊब गये हैं।

रानी : (**पूरन की बात अनसुनी करके वकील साहब से**) अलग कहाँ ?

त्रिलोक : मैं कचहरी रोड पर एक फ्लैट ले रहा हूँ, हफ्ता दस दिन तुम्हें पुराने घर में रहना पड़े तो पड़े, इससे अधिक एक दिन भी मैं तुम्हें वहाँ न रहने दूंगा।

रानी : (**सामन छत पर जैसे किसी स्वप्न संसार में विचरते हुए**) कचहरी रोड के पास तो कम्पनी बाग है न !

त्रिलोक : हाँ-हाँ, हम सुबह-शाम वहाँ सैर को जाया करेंगे।

रानी : कैपिटल सिनेमा भी तो कचहरी रोड पर है !

त्रिलोक : और अब वहाँ हिन्दी फिलम भी आने लगे हैं, छै के शो में हमेशा हिन्दी फिल्म आते हैं। इसी हफ्ते 'राग रंग' आया है और 'राग रंग' में गीता बाली इतना सुन्दर अभिनय करती है कि तुम मुग्ध हो जाओगी। पुराने घर से सिनेमा जाना तो यहाँ से दिल्ली जाने के बराबर है। यहां तो हफ्ते में दो बार सिनेमा देखने जाया करेंगे।

रानी : कचहरी रोड पर तो हमारा बँगला भी है, हम वहीं

उठ जायेंगे । मैं राजो को वहाँ बुला लूंगी, उसका दिल बहल जायगा । मेरी सहेलियां, जो वहाँ पर भी न मार सकती थीं, यहाँ बेधड़क आया करेंगी !

त्रिलोक : (**खुश होकर**) और मेरे दोस्त बेधड़क आयेंगे और हम कार में पिकनिकों पर जाया करेंगे ।

रानी : (**चौंक कर और सहसा पलट कर**) कार, आपने कार कब ली?

त्रिलोक : (**सहसा घबरा जाता है**) वह......वह......कार... वह कार तो रायसाहब अपने-आप दे देंगे, वह तो शादी पर ही उन्होंने देने को कहा था । हम अलग रहे नहीं, उन्होंने कार और मकान दिया नहीं । अब हम अलग रहेंगे तो वे अपने आप हमको मोटर और मकान दे देंगे ।

(**पूरन जोर से ठहाका मारता है ।**)

रानी : तो आप उस मोटर और मकान के लिए अलग हो रहे हैं ! मैं भी सोच रही थी कि आज रानो पर इतना मोह क्यों उमड़ आया......

त्रिलोक : (**और भी घबराकर**) नहीं......नहीं......वह तो......मैं तो...अलग होने की शुरू से सोच रहा हूँ । तुमने मकान की बात की तो मेरे मुंह से कार की बात निकल गयी । कार और मकान तो पिता जी तुम्हारे नाम कर ही रहे हैं ।

रानी : (**चितवन पर बल पड़ जाते हैं ।**) आपको कैसे पता चला?

त्रिलोक : (**खोखली सी हँसी हँस कर**) हमको किस बात का पता नहीं चलता, हम वकील हैं । शहर की राई-रत्ती खबर हम तक आ जाती है । वे तो वसीयत में यह बात लिखने जा रहे हैं । चचा वृन्दाबन कहते थे ।

रानी : (**और भी क्रोध से**) क्या कहते थे चाचा वृन्दाबन ?

त्रिलोक : वे तो इसी बीच में मेरे पास कई बार आये। तुम्हें ले जाने के लिए कहते थे, पर मैंने कहा कि जब तक मैं अलग नहीं हो जाता, मैं उसे यहां लाकर हरगिज़ उसका अपमान नहीं करा सकता।

पूरन : (**जोर से ठहाका मारता है।**) आपको रानो के मान-अपमान का कितना खयाल है ? शायद इसके अपमान ही के खयाल मे आप ने झूठे-सच्चे साल भर इसकी खबर नहीं ली !

त्रिलोक : मैं लगातार कोशिश करता रहा......

पूरन : (**बात काट कर**)......कि इसकी खबर लेने की कोशिश करें !

त्रिलोक : (**खिसियाना हो कर**)......कि अलग मकान की व्यवस्था होते ही इसे लेने आऊँ।

पूरन : और जब चचा वृन्दाबन ने आपको पिता जी की वसीयत की खबर दी तो आपने झट इसकी व्यवस्था कर ली।

त्रिलोक : व्यवस्था कर ली। पिता जी कितने नाराज़ हैं मेरे अलग होने की खबर सुन कर। यह तुम क्या जानो ? और फिर मकान मिलना आजकल कोई आसान है...वह भी कचहरी रोड पर, कोशिश कर रहा हूँ कि अच्छा-सा फ्लैट मिल जाय।

रानी : (**सहसा चीख कर**) मुझे न आपका फ्लैट चाहिए, न पिता जी का मकान। आप जाइए !

त्रिलोक : (**इस अप्रत्याशित आघात से चौंक कर**) रानो !

रानी : आप जाइए, मेरी तबियत ठीक नहीं। (**पूरन से**) चलो पूरन, हम उधर बैठें, राजो अकेली है।

त्रिलोक : (**स्तम्भित**) रानो !

रानी : (**क्रोध से**) मैं इतनी देर से चुपचाप आपकी ये चिकनी चुपड़ी बातें सुन रही हूँ। आप क्या मुझे मूर्ख समझते हैं ? क्या आपका ख़याल है कि उस अपमान, निरादर और घोर मानसिक यंत्रणा के बाद जो आपने दो बरस मुझे दी, मैं इतनी भोली हूँ कि आपकी इन झूठी-मीठी बातों के भुलावे में आ जाऊँगी और समझ लूंगी कि आप एकदम पत्थर से मोम हो गये हैं; कि आपको उस रानी में, जिसे आपने घर से निकाल दिया था, इतने गुण नज़र आने लगे हैं कि आप उसे लेने दौड़े आये हैं; कि आपको अचानक उससे इतना मोह हो आया है कि आप अपने माँ, बाप, भाई-बहनों को नाराज़ करके उसे लेकर अलग होने को तैयार हो गये हैं ? मैं आपको खूब जानती हूँ, आपकी मोह-ममता को समझती हूँ। (**सामने शून्य में देखते हुए धीमे स्वर में**) कभी जब मैंने आपको समझा, जाना न था तो मैं सोचा करती थी कि मैं अपने पति के साथ छोटी-सी अलग दुनिया बसाऊँगी, जिसमें हम अपना जीवन जी सकेंगे। अपने सपनों के अनुसार छोटी-सी दुनिया बसा सकेंगे, लेकिन मेरा वह सपना कब से मरीचिका सिद्ध हो चुका है (**धीमे से**) आपने अलग रहने की बात कही तो क्षण भर को मुझे उसी सपने की याद हो आयी। (**तिक्त हँसी के साथ उसी व्यंग्य से**) लेकिन क्या मरीचिका ने कभी किसी की प्यास बुझायी है ? आप जाइए.....पिता जी से मकान

लीजिए, मोटर लीजिए। मुझे उस मकान मोटर की ज़रूरत नहीं।

[मुड़ कर तेजी से जाना चाहती है, कि मुरझाई हुई राज से टकरा जाती है, जो शायद उनकी बातें सुन कर चली आयी है।]

राज : जीजी !

रानी : अरे, तू क्यों इधर आ गयी उठ कर ?

राज : जीजी, क्या करती हो, घर आये सौभाग्य को ठुकराती हो ?

रानी : मैं इस सौभाग्य की हकीकत खूब जानती हूँ।

राज : (**त्रिलोक से**) जीजा जी, आप इसकी बात का गुस्सा न करें, मेरे कारण यह अपने आपे में नहीं है।

त्रिलोक : (**आगे बढ़ कर**) क्यों राज, क्या हुआ तुम्हें ? तुम तो पहचानी नहीं जातीं !

रानी : चल, चल, इन्हें अपनी बिपदा सुनाने का कोई लाभ नहीं, ये सब एक सरीखे ज़ालिम और निर्दयी हैं।

(उसे लगभग ढकेलती हुई अन्दर ले जाती है।)

त्रिलोक : (**पूरन से**) राजो को क्या हुआ ?

पूरन : बेहोश हो गयी थी।

त्रिलोक : लेकिन क्यों ?

पूरन : आप बैठिए यहाँ, आप तो पिता जी से मिल कर ही जायेंगे न, वे आपको बता देंगे। मैं ज़रा राजो को देखूं !

[**चला जाता है । त्रिलोक हताश कौच में धँस जाता है, बाहर काल-बेल बजती है । त्रिलोक उठता है ।**]

त्रिलोक : कौन है ?

बनवारी : (**जरा-सा पर्दे से झाँक कर**) में आ सकता हूँ ?

त्रिलोक : यार माफ़ करना मैं......

बनवारी : तुम चुगद नम्बर वन हो, आध घंटे से मैं बागीचे में टहल रहा हूँ और आप हैं कि......

त्रिलोक : अरे यार, सब मिस-फ़ायर हो गया ।

बनवारी : मिस-फायर ?

त्रिलोक : तीर निशाने पर नहीं बैठा ।

बनवारी : क्यों ?

त्रिलोक : वह तो पुट्ठे पर हाथ ही नहीं रखने देती ।

बनवारी : साले, तुमने ज्यादती भी तो कम नहीं की ।

त्रिलोक : लेकिन यार......

बनवारी : लेकिन यार—मैंने पहले ही कहा था कि ऐसे खाली हाथ मत जाओ, एक बढ़िया साड़ी, एक बढ़िया सा लाकेट और आवेज़े लेते जाओ ।

त्रिलोक : मैंने कहा कि ज़रा सुन-गुन ले लूं । यह न हो कि चार पाँच सौ की चपत मुफ्त में पड़ जाय । मोटर और मकान की बात वृन्दाबन ने कही थी, पर मैं बिना पक्के पाँव अब के नहीं ले जाने का । जरा पंडित जी आते तो पता चलता, बहिन भाइयों से मिल कर तो मालूम नहीं होता कि वृन्दाबन की बात सच है ।

बनवारी : तुम ब्राह्मण होकर भी बनिया हो। अब भी मेरा कहा मानो, चौक से एक बढ़िया साड़ी लो, सिविल लाइन्स से एक बढ़िया सा सेट। फिर आओ और देखो रूठे यार कैसे मनते हैं!

(दोनों निकल जाते हैं।)

(पर्दा गिरता है।)

तीसरा अंक

[पर्दा उठने पर बिजली पहलवान और फैक्टरी के दूसरे कर्मचारियों की भीड़ के आगे-आगे, पं० ताराचन्द बृजनाथ और शिवराम के साथ, आवेश में बातें करते हुए प्रवेश करते हैं ।]

ताराचन्द : तुम टांग की बात कहते हो शिवराम, ब्रह्महत्या यदि पाप न होती तो आज विष्णु पंडित के उस सिरफिरे लड़के की गर्दन टूट चुकी होती । उसके घर क्या बहन और उसके बाप के घर बेटी नहीं क्या ? उसे शर्म न आयी राजो के ऊपर, सौत का ब्याह पढ़ाते ? उसकी यह टूटी टांग सदा उसे उसके पाप की याद दिलाती रहेगी !

[आकर धम्म से तख्त पर बैठ जाते हैं । उनके मित्र उनके आस-पास तख्त कौच इत्यादि पर बैठते हैं ।

बिजली पहलवान अपने साथियों के आगे दरवाजे की चौखट में खड़ा रहता है ! बैठते ही ताराचंद सन्तू को आवाज देते हैं :]

ताराचन्द : सन्तू ओ सन्तू !

सन्तू : (**जो भीड़ में पीछे खड़ा है, आगे बढ़कर**) जी सरकार !

ताराचन्द : यह हुक्का ताज़ा कर ला।

सन्तू : जी अभी लाया।

(**हुक्का उठाकर आंगन में ले जाता है।**)

ताराचन्द : मुझे विष्णु पंडित का ख़याल आ गया, बृजनाथ। हमारा-पुरोहित न सही, पर मेरे यहाँ पत्री-पोथा वही बनाता है। उसके ज्योतिष की मैं कद्र करता हूँ, इकलौता उसका लड़का है, अगर मर जाता तो उसके साथ पंडित भी मर जाता।

बृजनाथ : लेकिन तुम्हें सबर से काम लेना चाहिए, ताराचन्द ! मुसीबत पर मुसीबत को बुलाना समझदारी का काम नहीं। उधर रानो की चिन्ता है, इधर राजो का जीवन खटाई में पड़ गया, ऊपर से तुम मामले-मुकदमे में उलझ जाओ, यह कहाँ की बुद्धिमानी है।

शिवराम : जलते घी पर पानी डालने के बदले हवा करोगे तो सब भस्मीभूत होकर रह जायगा।

ताराचन्द : (**लगभग चिल्ला कर**) हो जाय भस्मीभूत ! मुझे कोई परवाह नहीं ! उस पाजी की यह मजाल कि पंडित ताराचन्द की लड़की के ऊपर सौत लाये ?

बृजनाथ : लेकिन इसमें उसका क्या दोष है ? मजा मारे गाजी

मियां और मार खायं डफ़ाली । करे गंगाराम और भरे जमुनादास ? दोष तो तुम्हारे जमाई का है ।

ताराचन्द : उसे, तुम्हारा खयाल है, मैं सस्ता छोड़ दूंगा ? मेरी लड़की को यों जलाकर वह चैन की बंसी बजा सकेगा ? दो चार दस हजार की बात होती तो मैं उसके मुंह पर मार देता । उससे तो त्रिलोक ही अच्छा निकला । कुछ कहे सुने बिना उसने जाकर दूसरी शादी तो नहीं रचा ली । अभी उसकी प्रैक्टिस चली नहीं, कुछ मदद चाहता है, सो मैं उसे मदद दूंगा । लेकिन इसने तो, सान न गुमान, सिर पर बम ही गिरा दिया । मैं समझता था कि यह लड़का गाय है और मैं एक मकान उसके नाम करने जा रहा था ।

सन्तू : (**नौकर को आवाज देते हैं**) सन्तू ले भी आ हुक्का । (**आंगन से**) जी आया सरकार !

शिवराम : तुम्हें गुस्सा छोड़कर बिगड़ी बात बनाने की कोशिश करनी चाहिए । शादी तो हो चुकी, लेकिन इससे पहले कि उस लड़की के पाँव वहाँ जमने पायें तुम्हें राजो को वहाँ भेज देना चाहिए ।

ताराचन्द : (**चिल्ला कर**) जब तक वह वेश्या वहाँ है, राजो वहाँ हरगिज़ नहीं जा सकती !

बृजनाथ : लेकिन पंडित उदयशंकर जो कहते हैं ।

ताराचन्द : (**उसी तरह चिल्ला कर**) पंडित उदयशंकर चाहे जो कहें, जब तक वह लड़की वहाँ है, राजो हरगिज़ वहां नहीं जा सकती । (**अचानक बिजली पहलवान और उसके साथियों से**) तुम लोग जाओ और जा कर अपना काम देखो । अव्वल तो मुझे उम्मीद नहीं कि कोई मामला

चलाने की हिम्मत करेगा, लेकिन अगर कुछ हुआ भी तो चिन्ता न करना। हजार-दो-हजार रुपया भी क्यों न लग जाय, तुम पर आँच न आयेगी, उसके साथियों में से एकाध की टांग, गर्दन तोड़ना जरूरी था ताकि उसे पता चल जाय कि अगर वह सीधी राह न आया तो उसके साथ भी वही होगा जो विष्णु पंडित के लड़के के साथ हुआ।

[उठकर घूमते हैं। बिजली पहलवान और उनके साथियों की भीड़ छँट जाती है। अन्दर आंगन से रानी और पूरन भागे आते हैं, पीछे-पीछे चींटी की चाल से आती हुई राजो भी है, जो आंगन की चौखट में ही अटक जाती है।]

रानी } एक साथ } क्यों पिता जी !
पूरन } } क्या फैसला कर आये ?

[लेकिन पंडित ताराचन्द की दृष्टि उनके ऊपर से होती हुई राजो पर चली जाती है, जो चुप-चाप अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए दरवाजे में खड़ी है और जिसका रंग कपास के फूल ऐसा पीला हो गया है।]

ताराचन्द : (लगभग आर्द्र होकर) राजो बेटी।

(राज वहीं खड़ी है।)

— : इधर आओ बेटी !

(राज धीरे-धीरे आकर उनके पास खड़ी हो जाती है।)

— : (उसे अपने पास तख्त पर बैठाते हुए) तू कितनी दुबली हो गयी है और कहती थी पहले से मोटी हो गयी

हूँ ! (खोखली सी दर्द भरी हँसी हँसते हुए) तू तो एक दम पीली हो गयी है । कोई बीमारी-ऊमारी तो नहीं ले आयी ससुराल से ?

रानी : इसे अभी मूर्च्छा आ गयी थी ।

ताराचन्द : इस हालत में मूर्च्छा न आती तो और क्या होता ! (**नौकर को आवाज देते हैं**) सन्तू, सन्तू !

सन्तू : (**आंगन से**) जी सरकार ! (**हुक्का लिये भागता हुआ आता है**) जी....जी !

ताराचन्द : भाग कर बाजार से आठ-दस आने का गाजर का मुरब्बा और कुछ चाँदी के वरक ले आ ! यह बहुत कमजोर दिखायी दे रही है ।

[ताराचन्द जेब से एक रुपये का नोट निकाल कर उसकी ओर फेंकते हैं । सन्तू चुप-चाप उठा लेता है। निचले सम्वादों में वह मौन-रूप से हुक्का रख कर गाजर का मुरब्बा लेने चला जाता है ।]

ताराचन्द : (**हुक्के का कश लेकर राज के सिर पर प्यार का हाथ फेरते हैं**) तू किसी तरह की चिन्ता न कर बेटी, वह उस चुड़ैल के फंदे में फँस गया है । उस वेश्या ने......

पूरन : वेश्या ? पर वे तो सुदर्शना बेरी से शादी करने जा रहे थे !

तराचन्द : (**सक्रोध**) हाँ वही ! वेश्या नहीं तो वह और क्या है ? जो लड़की एक विवाहित पुरुष के साथ नंगे सिर, नंगे मुंह, बारीक कपड़े पहने ओठ-मुंह रंगे, आवारा

घूमती है, जिसे न अपना खयाल है न भले घराने की दूसरी लड़की का, वह वेश्या नहीं तो और क्या है ? मैं कहता हूँ, वेश्याओं में भी इतनी लाज-शरम होती होगी। क्यों बृजनाथ ?

बृजनाथ : फ़ैशन की मारी इन लड़कियों और वेश्याओं में क्या फ़र्क है ? वह उसकी बाहरी टीम-टाम से चौंधा गया है, लेकिन जल्दी ही उकता जायगा, मैं लिखे देता हूँ।

शिवराम : यह तो बाहरी आकर्षण है, ताराचन्द। दो ही दिन में उतर जायगा।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे ! उसका तो सारा वेतन इसकी एक साड़ी पर खर्च हो जायगा।

पूरन : आखिर आप फैसला क्या कर आये ?

ताराचन्द : एक भी भाँवर कम रह जाती तो मैं रुकवा देता शादी ! बिजली पहलवान भुरकस बना के रख देता सब का। लेकिन ब्याह हो चुका था। तो भी उस सिरफिरे पंडित की टांग और दो चार के सिर फटे।

पूरन : लेकिन प्रोफ़ेसर मदन से क्या बात हुई ?

ताराचन्द : उसका अन्त शायद उन सब से बुरा होता, लेकिन अपने हाथों अपनी लड़की को विधवा बनाने.....

राज : (**उनके मुंह के आगे हाथ रखते हुए**) पिता जी !

रानी : आपने पूछा नहीं प्रोफेसर मदन से कि तुम्हें इस लड़की से शादी करनी थी तो किसी दूसरी भली लड़की का जीवन क्यों नष्ट किया......?

ताराचन्द : पूछा नहीं, मेरे प्रश्नों के मारे नाको में दम आ गया प्रोफेसर साहब का। एक बात मुंह से न निकली। लगे हकलाने। मैं तो उसके होश ठिकाने कर देता, लेकिन पंडित उदयशंकर वहाँ पहुँच गये। अपने लड़के की करतूत का उन्हें भी उसी समय पता चला था। पगड़ी उतार कर उन्होंने मेरे पैरों पर रख दी और कहने लगे, "लड़के से गलती हो गयी है। आप चिन्ता न करें, हमारी बेटी को किसी प्रकार का कष्ट न होने पायगा, कुछ दिनों की बात है, इस लड़की का जादू उतरा कि वह उसी के चरणों में आगिरेगा।

(हुक्का पीते हैं)

बृजनाथ : यही तो मैं कहता हूँ। जवानी के मद में लड़के कई बार ऐसी गलतियां कर बैठते हैं।

रानी : तो क्या इस ब्याह के बाद भी आप राजो को वहाँ भेजेंगे ?

बृजनाथ : नहीं तो क्या बेटा उस चुड़ैल के पैर वहाँ जमने देंगे ! इस समय वह राजो को भी रखने के लिए तैयार है।

ताराचन्द : (**सहसा हुक्का पीना छोड़कर सव्यंग्य और सक्रोध**) रखने के लिए तैयार है......क्या यह किसी घसियारे की लड़की है......किसी लोहार-सुनार की लड़की है...... रखने के लिए तैयार है !......जब तक वह वेश्या उस घर में है, ताराचन्द की लड़की कभी वहाँ नहीं जा सकती !

शिवराम : देखो ताराचन्द, इस वक्त तुम गुस्से में हो। उस लड़की के पैर वहाँ जम गये तो फिर राजो को वहाँ भेजना मुश्किल हो जायगा, क्या तुम उसे जिन्दगी भर घर बैठाओगे ?

(ताराचन्द केवल चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं ।)

रानी : लेकिन उन्होंने राजी में कुछ तो दोष बताया होगा ।

बृजनाथ : कुछ नहीं बेटी, उस पर बस उस लड़की का जादू सवार है । वह कहता है कि राज में और मुझ में किसी तरह की मानसिक समता नहीं ।

शिवराम : मैंने उसे समझाया था कि मानसिक समता एक महीने में नहीं हो जाती । सुदर्शन को आप बरसों से जानते हैं । राज को आप सिर्फ एक साल दीजिए, फिर आप देखिए कि आपमें और उसमें मानसिक समता होती है कि नहीं ।

बृजनाथ : जहाँ तक मेरा ख़याल है उसने यह काम अपने पिता से बदला लेने के लिए किया है ।

रानी : बदला ?

बृजनाथ : वह यहाँ ब्याह न करना चाहता था, उन्होंने विवश किया । उसी की प्रतिक्रिया है यह शादी ।

रानी : लेकिन इस घरेलू झगड़े में एक दूसरी निर्दोष लड़की का जीवन नष्ट करने का उन्हें क्या अधिकार है ? और इस अपमान के बाद राज ही वहाँ क्यों जाय ?

बृजनाथ : राज का वह घर है । उस पर उसका अधिकार है, पति यदि भूल करता है तो प्रतिव्रता स्त्री उसे सदैव क्षमा कर देती है ।

रानी : लेकिन यदि स्त्री ऐसी गलती करती है तो क्या पति उसे क्षमा कर देता है ?

ताराचन्द : (सहसा हुक्का पीना छोड़कर) जब तक वह वेश्या उस घर में है, राज वहाँ नहीं जायगी बृजनाथ ! अब इस

किस्से को छोड़ो। (**ज़ोर से हुक्के का कश खींचते हैं।**) मदन शायद यह समझता है कि चार अच्छर पढ़ कर या दो अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी करके वह ताराचन्द के कुल का अपमान कर सकता है, लेकिन उसे मालूम नहीं कि ताराचन्द अपने कुल के नाम और उस नाम की प्रतिष्ठा को सबसे ऊपर समझता है। कुल की मर्यादा का ही सवाल था कि रानी पिछले साल आयी तो फिर मैंने उसे नहीं जाने दिया। किसी तरह भी रहने की बात होती तो क्या मैं उसे वापस न भेज देता, लेकिन तुम जानते हो, मैं किस बात पर ज़ोर देता रहा हूँ—त्रिलोक अलग होने को तैयार हो, उसे मान से रखने को तैयार हो तो फिर रानी जा सकती है और इसके लिए मुझे मकान और मोटर भी देनी पड़े तो मैं दे दूंगा।

[**हुक्के का बहुत लम्बा कश लेते हैं, फिर किंचित धीमे और क्रोध भरे स्वर में :**]

[ता]चन्द : मैंने केवल पंडित उदयशंकर का स्वभाव देखा था बृजनाथ, नहीं उस कुल में है क्या ? यजमानों की चिलमें भरते और भांडों की तरह गा-गाकर कथा बांचते उनकी सात पीढ़ियां गुज़र गयीं, ताराचन्द बेटी वाला सही, लेकिन वह अपने कुल का अपमान होता देखने के बदले बेटी को ज़हर दे सकता है......

[**सहसा पर्दा उठा कर पंडित उदयशंकर गले में पल्ला डाले, दोनों हाथ बांधे प्रवेश करते हैं। उनके पीछे-पीछे कुछ और लोग भी हैं। राज हल्का-सा घूंघट कर लेती है।**]

[उदय]शंकर : हमारी मजाल कि हम आपके कुल का अपमान करें,

पंडित जी। हम बेटे वाले हैं, तो क्या हम इसी से बड़े हो गये? हम तो बड़े हुए कि आपने हमारे होकर हमें बड़ा बनाया। मैं आपको रोकता रह गया, पर आप क्रोध-वश कार में बैठकर चले आये, मैं पल्ला गले में डाले सीधा 'खाई वालों की धर्मशाला' से यहां आया हूँ। लड़के का दिमाग फिर गया हो, वह अपनी औकात भूल गया हो, पर उसका बाप अपनी औकात नहीं भूला। उसकी इज्ज़त आपके चरणों पर है। (**सिर से पगड़ी उतार कर पंडित ताराचन्द के पैरों पर रख देते हैं।**) चाहे रखिए चाहे ठुकराइए!

राज : (**सहसा उठते और अपने पिता के चरणों से पगड़ी उठाकर अपने ससुर को देते हुए**) पिता जी, आप क्या करते हैं? (**फिर लगभग रुँधे स्वर में ताराचन्द से**) पिता जी, मैं जाऊँगी।

ताराचन्द : जब तक वह लड़की उस घर में है, तू वहाँ नहीं जायगी।

उदयशंकर : वह लड़की उस घर में नहीं रहेगी। (**राज के कंधे पर हाथ रखते हुए**) वहां हमारी यही बेटी रहेगी।

बृजनाथ : यदि राजी इस समय चली जायगी ताराचन्द, मान-अपमान का विचार छोड़, विवेक से काम लेगी तो वह अपने पति को उस लड़की के कु-प्रभाव से बचा सकेगी। (**राजी से**) देख बेटी, तेरे पति ने एक भूल की है, तू दूसरी भूल न करना। उसकी गलती को क्षमा कर देना। उसे अपना लेना। उसे उसकी गलती की याद न दिलाना। उस लड़की को भी न कोसना। यह काम तू अपने सास ससुर के लिए छोड़ देना। तेरा पति उस

लड़की के पास जाय तो उसे न रोकना। वह लड़की तेरे पति के पास आये तो उससे घृणा न करना। यह आसान नहीं। बहुत-बहुत कठिन है। देवियों का काम है। पर हिन्दुस्तान की लड़कियों ने देवियों से बढ़ के काम किये हैं और वे कई बार इस अग्नि-परीक्षा में सफल हुई हैं। तू यह सब करेगी तो अन्त में विजय तेरी होगी। उस दूसरी लड़की से वह कुछ ही दिनों में उकता जायगा।

पूरन : किन्तु वह लड़की अब केवल दूसरी लड़की नहीं रही, उनकी ब्याहता बीवी है।

रानी : क्या आप राजी को सौत पर भेजेंगे ?

बृजनाथ : माता कौशल्या की एक छोड़ दो सौतें थीं।

पूरन : लेकिन दशरथ राजा थे। आप साधारण लोगों की बात कीजिए। और फिर कौशल्या ही कौन-सी सुखी रहीं ? चौदह बरस तक रोते-रोते उनकी आंखें अन्धी हो गयीं। और कौन कह सकता है कि रामायण में सत्य कितना है और झूठ कितना।

ताराचन्द : (अत्यधिक क्रोध से) पूरन ! अपने धर्मग्रन्थों का अपमान करते तुम्हें शर्म नहीं आती ?

रानी : जिस व्यक्ति ने राजी का इतना तिरस्कार किया, बिना किसी दोष के दूसरा ब्याह कर लिया, उसके पास जाने को, उसकी सेवा करने को आप कहते हैं ?

बृजनाथ : भगवान शंकर की भांति हिन्दू देवियों ने कई बार विष-पान किया है।

पूरन : लेकिन मैं पूछता हूँ, विष-पान क्यों आवश्यक है ?

शिवराम : तो क्या तुम लोग चाहते हो कि यह जीवन भर यहां बैठी जलती कुढ़ती रहे ?

रानी : जले कुढ़ेगी क्यों, पढ़-लिख कर अपने पांव पर खड़ी होना सीखेगी।

ताराचन्द : पूरन, बको मत ! सोच कर बात करो !

बृजनाथ : बेटा, पढ़ाना-लिखाना लड़की को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने के लिए होता है, लेकिन ब्याह का केवल यही पहलू तो नहीं, दूसरा भी है ! ब्याह का केवल आर्थिक पहलू होता तो राजे-महाराजे अपनी लड़कियों के ब्याह न करते।

पूरन : राजी का दूसरा ब्याह हो सकता है।

उदयशंकर : पूरन !

राज : भैया !

पूरन : पुरुष एक स्त्री के होते दूसरा ब्याह कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती, विशेषकर पुरुष के ठुकरा देने पर ?

बृजनाथ : कानून के अनुसार हिन्दू-ब्याह टूट नहीं सकता। कानून राजी को इस बात की आज्ञा न देगा।

पूरन : प्रोफ़ेसर मदन दे देंगे।

राज : (अत्यन्त पीड़ा और दुख से, जैसे इस जिक्र ही से उसे कष्ट हो रहा है) भैया !

उदयशंकर : आपको शर्म नहीं आती, अब ब्राह्मणों की बहू-बेटियां वेश्याएँ बनेंगी ?

पूरन : किन्तु ब्राह्मणों की बहू-बेटियां क्या......?

ताराचन्द : (गरजकर) चुप रह पूरन !

राज : मैं जाऊँगी, पिताजी !

ताराचन्द : नहीं, तू नहीं जायगी। पूरन और राजो की बात मैं नहीं मानता। मदन यदि उस लड़की को छोड़ दे तो इस अपमान के बाद भी मैं कहूँगा कि तू अपने पति के घर जा। लेकिन जब तक वह वेश्या उस घर में है, मैं तुम्हें हरगिज़ वहां नहीं भेज सकता। मेरी लड़की हर घड़ी अपनी सौत के मुंह की ओर देखे, ब्राह्मण की बेटी होकर एक अज्ञात-कुल-शीला की चिरौरी करे, यह मेरा और मेरे कुल का अपमान है।

राज : मैं जाऊँगी, पिता जी !

ताराचन्द : अपने कुल के मान को तज कर भी ?

राज : मेरा कुल तो उसी दिन बदल गया, जिस दिन आपने मेरा हाथ दूसरे को दे दिया।

रानी : गीली लकड़ी की तरह तुम्हें सुलगना पसन्द है।

राज : मैं यहां भी सुलगती रहूँगी जीजी (पिता से) मैं आपके पांव पड़ती हूँ पिता जी, मुझे इसी घड़ी भेज दीजिए। मेरे देवता तुल्य ससुर को और न अपमानित कीजिए।

[ताराचन्द क्षण भर क्रोध से आंखें लाल किये अपनी लड़की की ओर देखते हैं, पर उसकी आंखों में इतनी करुणा और आर्द्रता है कि विवश हो वे सर झुका लेते हैं।]

ताराचन्द : (लगभग हुंकारते हुए) अच्छा तुम्हारी मर्ज़ी। (उदय-

शंकर से) आप ले जाइए पंडित जी, लेकिन इतना याद रखिए कि ताराचन्द की बेटी उस घर में हेय होकर नहीं रह सकती। जो हाथ उस विष्णु पंडित के सिरफिरे लड़के की टांग तोड़ सकते हैं, वे समय पड़ने पर अपनी लड़की को विधवा भी बना सकते हैं, उसका गला तक घोंट सकते हैं। आप इसे मान से रखें तो आप जो चाहें मैं कर दूंगा ? मदन को नयी कार ले दूंगा, कोठी बनवा दूंगा। बस मेरी बेटी हेठी होकर न रहे !

उदयशंकर : आपकी बेटी हमारी बेटी नहीं क्या ? वह हेठी होकर क्यों रहेगी ? वह हमारे घर की लक्ष्मी बन कर, हमारे माथे का मुकुट बन कर रहेगी।

(वृन्दाबन खुश-खुश प्रवेश करता है।)

वृन्दाबन : ताराचन्द, बधाई हो, लो मुंह मीठा कराओ और रानी को तैयार कर दो (**सहसा उन सबको वहां इकट्ठे और उनकी आकृतियों पर चिन्ता क्रोध, करुणा तथा दुख के साये देखकर**) क्यों, बात क्या है ?.....(**फिर एक दृष्टि सब पर डालते हुए**) क्या बात है ?

ताराचन्द : कुछ नही, यह पंडित उदयशंकर राजो को लेने आये हैं। तुम कहो, क्या त्रिलोक से मिले ?

वृन्दाबन : मैं कहता हूँ, मैंने इस चतुराई से बात चलायी कि वह न केवल मान गया, बल्कि रानो को लेने आ रहा है।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे ! तुमने मेरे वंश को कलंक के टीके से बचा लिया। तुमने रानो का ही जीवन नहीं बनाया, मेरी भी सबसे बड़ी चिन्ता दूर कर दी, पर यह चमत्कार हुआ कैसे ?

उदयशंकर : (**राज से**) चलो बेटी, तुम तैयारी करो !

राज : मुझे तैयारी ही कौन करनी है । ट्रंक बँधा-बँधाया तैयार पड़ा है ।

उदयशंकर : चलो, दिखाओ कहां है ? (**अपने साथ के एक लड़के से**) महेन्द्र, तुम भाग कर तांगा ले आओ ।

ताराचन्द : सन्तू......सन्तू.....वह सन्तू कहां है ?

उदयशंकर : (**मुड़कर**) आप चिन्ता न करें पंडित जी, मेरे साथ लड़के हैं (**दूसरे लड़के से**) श्रीधर, तुम मेरे साथ आओ !

(**राज के पीछे जाते हैं । रानी भी उनके पीछे जाती है ।**)

रानी : अरे तो कुछ खा पी तो लो । जब से आयी हो तुमने पानी तक नहीं पिया और तुम्हें मूर्च्छा आ गयी थी ।

(**उनके पीछे निकल जाती है ।**)

वृन्दाबन : (**भेद भरे स्वर में**) एक दिन अपने लड़के का ज़िक्र करते हुए मैंने बातों-बातों में त्रिलोक से उसके ब्याह और घरेलू जीवन की बात चला दी । उसके भाग्य को सराहा कि उसे रानी जैसी भले कुल की सुशील और समझदार लड़की मिली है । इस पर जल कर वह अपने वैवाहिक जीवन की असफलता का रोना रोने लगा । उसने रानी के विरुद्ध शिकायतों का एक दफ्तर खोल दिया । मैंने उसे समझाया कि जहां परिवार इकट्ठे रहते हैं, वहां बहुओं से ये शिकायतें आम होती हैं । सौ में से शायद एक बहू ऐसी मिले जिसके विरुद्ध ये शिकायतें न हों ।

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे !

वृन्दाबन : (**प्रशंसा से खुश होकर**) इस पर वह झेंपा, फिर

कहने लगा......इस दशा में जब कि मैं ने प्रैक्टिस अभी हाल ही में शुरू की है मेरे लिए अलग घर बसाना मुश्किल है। मैं ने कहा......तुम अलग रहना चाहो और अपनी बीवी को ज्वाइंट फेमिली के उस झगड़े-झाँझे में रखकर उसका अपमान न करो तो तुम्हारे ससुर ही तुम्हारी सहायता कर सकते हैं। और मैंने दहेज़ में मोटर और मकान न दे सकने का कारण बताया और कहा कि आज तुम अलग हो जाओ तो कल तुम्हें दोनों चीजें लेकर देना मेरा काम रहा......

ताराचन्द : भगवान तुम्हारा भला करे !

वृन्दावन : इस पर वह मान गया और खुद ही कहने लगा कि असल में सौ में से अस्सी जोड़ों के असफल रहने का कारण कुटुम्बों का सम्मिलित होना है। नये घर में आकर नयी ब्याही लड़कियों को अपने व्यक्तित्व को नये सिरे से ढालने की कठिनाई से दो चार होना पड़ता है। जब वे इस कोशिश में असफल रहती हैं, तो उन्हें प्रति-पल सास-ननदों के ताने सुनने पड़ते हैं। कहने लगा—"मैं तो रानो को सचमुच मन से चाहता हूँ, उसकी और उसके पिता की इज्ज़त करता हूँ, लेकिन अपने माँ-बाप और भाई-बहनों के हाथों मजबूर हूँ ।"

वृजनाथ : ये अनपढ़ सास ननदें जो न करें थोड़ा है।

ताराचन्द : (**वृजनाथ की बात के बीच ही में उठकर वृन्दाबन को गले चिमटाते हुए**) इस उपकार का बदला कैसे चुकाऊँ भाई, तुमने मुझे ज़िन्दगी भर के लिए खरीद लिया। मेरी बहुत बड़ी परेशानी दूर कर दी। (**और भी**

जोर से भींचते हैं, फिर पलट कर पूरन से) क्यों पूरन, मैं कहता था न कि वृन्दावन उसे मना लेगा (**वापस आते हुए पूरन के निकट रुक कर**) बुद्धिमान यों बिगड़ी बात बना लेते हैं और तुम कहते थे (**नकल उतार कर**) मैं उससे बात तक करना अपमान समझता हूँ।

वृन्दावन : त्रिलोक किसी समय भी रानो को लेने आ सकता है, सुबह ही मुझे मिला था।

पूरन : (**उसकी ओर ध्यान न देकर पिता की बात का जवाब देते हुए**) मेरा अब भी यही ख़याल है।

ताराचन्द : (**बैठने लगते हैं कि पूरन की बात सुनकर फिर उठते हैं, मुंह चिढ़ाते हुए**) मेरा अब भी यही ख़याल है। (**उस के पास से होकर रानो को आवाज़ देते हुए ख़ुशी-ख़ुशी अन्दर की ओर जाते हैं**) रानो......रानो !

रानी : (**आँगन से**) जी आयी (**दरवाज़े के पास ही उन्हें मिलती है।**) जी !

ताराचन्द : तुम भी तैयारी करो बेटा। (**उसके कंधे पर हाथ रखे वापस आते हुए**) त्रिलोक अभी तुम्हें लेने आ रहा है। वृन्दावन कहता है कि......

रानी : आपने उन्हें मकान का लालच दिया है ?

ताराचन्द : लालच, वह तो मैं तुम लोगों के ही नाम करने वाला था !

रानी : (**और भी दृढ़ता से**) आपने उन्हें मकान का लालच दिया है ?

ताराचन्द : तुम तो पागल हो। वह तो मैं तुम्हारे ही नाम करूँगा,

लेकिन बेटी स्त्री का धन उसके पति ही का होता है। तुम और त्रिलोक कोई दो थोड़ी हो।

रानी : न मैं उनका घर चाहती हूँ, न आपका मकान ! वे कुछ देर पहले आये थे और मैंने यह बात उन्हें समझा दी है।

ताराचन्द : क्या......

रानी : मैं वहां नहीं जाना चाहती।

ताराचन्द : पागल हो गयी है।

[**पंडित उदयशंकर के पीछे राज प्रवेश करती है। अपने पिता का आशीर्वाद लेने को रुक जाती है।**]

रानी : जिस व्यक्ति के समीप चन्द हज़ार के एक मकान का मूल्य मेरे मान से कहीं अधिक है, जो मुझे नहीं, मकान को चाहता है, मैं उस लोलुप की शक्ल तक नहीं देखना चाहती।

ताराचन्द : (**क्रोध से**) रानो !

वृन्दावन : हिन्दू देवियां सपने में भी कभी अपने पति के विरुद्ध ऐसे शब्द नहीं कहतीं।

पूरन : चाहे वह पति कितना भी अत्याचारी क्यों न हो ?

ताराचन्द : पूरन !

वृन्दावन : तुम लोग गलत समझते हो। वह अत्याचारी नहीं, वह लोलुप भी नहीं, वह तो बेचारा गाय है। सारा दोष तो उसके माता पिता का है।

पूरन : (**व्यंग्य से**) बेचारा गाय !

वृन्दावन : रानो, वह वास्तव में तुमसे प्रेम करता है। तुम्हारा

आदर करता है। तुम्हारे लिए तो वह अपने मां बाप तक को छोड़ने के लिए तैयार है।

रानी : मैंने कभी नहीं चाहा कि वे अपने मां बाप से अलग रहें, अपने मां बाप को छोड़ दें, लेकिन यदि इस प्रकार वे एक मोटर और मकान हथिया सकें, तो इस बात का ढिंढोरा पीटने में भी उन्हें संकोच न होगा। आप कहते हैं, वे मुझ से प्रेम करते हैं, यदि मकान के साथ आप उन्हें मोटर भी ले कर देने का वचन दें तो वे मेरी पूजा तक करने लगेंगे।

वृन्दावन : (**शर्म दिलाते हुए**) रानी बेटी।

रानी : मैं पूछती हूँ, इस लोलुपता का पेट आप कब तक भर सकते हैं और मैं ही ऐसे लालची के साथ कब तक रह सकती हूँ ?

ताराचन्द : (**गरज कर**) तू अपने पति से घृणा करती है।

रानी : (**निर्भीकता से**) मेरा रोम-रोम उससे घृणा करता है।

ताराचन्द : (**संयम खोकर**) रानो, तू बके जा रही है और मैं चुपचाप तेरे मुंह की ओर तके जा रहा हूँ। तू नहीं जानती, अपने पति के विरुद्ध सपने में भी बुरी बात सोचना कितना बड़ा पाप है ! तू नहीं जानती, तू ने एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, तुझे एक ब्राह्मण मां ने पाला है; तू किसी चांडाल के घर उत्पन्न नहीं हुई !

पूरन : जहां तक मनुष्यता का सम्बन्ध है, ब्राह्मण और चांडाल में कोई अन्तर नहीं और फिर ब्राह्मण की लड़की का दिल चांडाल की लड़की से बड़ा नहीं होता और न वह पत्थर ही का......

ताराचन्द : (**गरजकर**) चुप रहो पूरन, और अपनी फ़िलासफ़ी अपने पास रखो । (**रानी से**) तू समझती है, रानो, कि अपने पिता के सम्मुख तू ऐसी अधर्म की बात करेगी और वह चुपचाप सुन लेगा ?

रानी : आपके धर्म की बातें मैंने बहुत सुन लीं पिता जी, आपका धर्म भी पुरुषों का धर्म है ।

वृन्दाबन : मैं कहता हूँ बेटी, त्रिलोक सचमुच तुम्हारा आदर करता है ।

रानी : मैं उस व्यक्ति को आप से अधिक जानती हूँ ।

बृजनाथ : तुम्हारे लाभ ही के लिए तो ये मकान तुम्हारे नाम कर रहे हैं बेटी ।

रानी : आप यह समझते हैं कि ये मकान मेरे नाम करके मुझ पर कोई उपकार कर रहे हैं ? ये मेरे गले में सदा के लिए दासता की बेड़ी डाल रहे हैं । मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ रहने को विवश कर रहे हैं जिसके लिए मेरे मन में लेश-मात्र भी सम्मान नहीं । ये मुझे फिर उस नरक में ढकेलना चाहते हैं, जहां घुट-घुटकर मैं अधमरी हो गयी हूँ । ये चाहते हैं, इनके नाम पर, इनके कुल के नाम पर कोई कलंक न आये, चाहे इनकी लड़की घुट-घुट कर मर जाय !

ताराचन्द : (**अत्यधिक क्रोध से**) रानी !

रानी : (**पूर्ववत् बृजनाथ से**) मैं उस व्यक्ति के साथ दो वर्ष तक रही हूँ और जितना मैं उसे जानती हूँ, आप या चाचा जी नहीं जानते । एक मकान के लोभ में वह मुझे

ले जायगा, वह मेरी प्रशंसा और खुशामद भी करेगा, किन्तु क्या इतना मूल्य देने के बाद इस खरीदे हुए पति को मैं पसन्द कर सकूंगी ? उसका सम्मान कर सकूंगी ? उसे पति परमेश्वर समझ सकूंगी ?

ताराचन्द : मालूम होता है इस निकम्मे, आवारागर्द लड़के ने तेरा भी दिमाग खराब कर दिया है। पिता के नाते मेरा यह आदेश है कि तू अपने पति के घर जायगी।

रानी : मैं इस आदेश का पालन नहीं कर सकती !

ताराचन्द : (**चिल्लाकर**) तू अपने पति के घर जायगी या इस घर में भी न रहेगी।

रानी : मैं इस घर को भी नमस्कार करती हूँ।

(**हाथ जोड़कर चलने को उद्यत होती है।**)

वृन्दाबन : रानो बेटा, तू कहां जा रही है ? तू नही जानती कि तू लड़की है, तू कहां जायगी ?

रानी : (**अवरुद्ध कंठ से**) जहां सींग समायेंगे, चली जाऊँगी, किन्तु इस घर में एक पल भी न रहूँगी।

पूरन : इस बात की चिन्ता न कीजिए चाचा जी। रानो को कहीं और न जाना होगा। यह मेरे साथ जायगी। जिसे आप लोग निकम्मा और आवारा समझ रहे हैं, वह अपनी सारी आवारागर्दी छोड़ कर, तन मन से परिश्रम करेगा, कमायेगा और अपनी बहिन को इस योग्य बनायेगा कि वह अपने पांवों पर खड़ी हो सके और अपने पिता की मोटर या मकान के बल पर नहीं, अपनी योग्यता के बल पर आदर-सम्मान पा सके।

ताराचन्द : अच्छा, तो यह आग तुम्हारी लगायी हुई है ! निकल जाओ, तुम दोनों मेरे घर से निकल जाओ !

राज : (आगे बढ़ कर अपने पिता को समझाते हुए) पिता जी !

पूरन : चलो रानो, इन पिताओं और पतियों में कोई अन्तर नहीं।

वृन्दावन : ('आप क्या कर रहे हैं', के अन्दाज में हाथ बढ़ाते हुए) ताराचन्द ।

उदयशंकर : ('आप तो समझदार हैं', के अंदाज में) पंडित जी !

बृजनाथ : (पूरन की ओर बढ़ कर समझाने के अन्दाज में) पूरन !

ताराचन्द : (उसी क्रोध की दशा में) चले जायँ । मेरी आंखों से दूर हो जायँ । ऐसी सन्तान से मैं निःसन्तान भला । बचपन ही से इनकी मां मर गयी । इतनी मुसीबतों से मैंने इन्हें पाला। क्या इसीलिए कि बड़े होकर ये ऐसे निर्लज्ज और नाखलफ़ साबित हों ।

रानी : (रुँधे हुए गले से) आप अन्याय करते हैं पिता जी । हम आपके उपकारों का बदला नहीं चुका सकते, किन्तु......

ताराचन्द : (चीख कर) चले जाओ, मेरी आंखों से दूर हो जाओ ।

राज : (रानी की ओर बढ़ते हुए) जीजी !

रानी : (जाते-जाते रुककर) आज से हमारे रास्ते अलग होंगे राजो । मैं प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो ।

पूरन : स्वाभिमानियों के लिए आदि-काल से यह मार्ग खुला है, राजो ।

राज : मेरा मार्ग भी तो आदिम है, भैया ।

पूरन : परमात्मा तुम्हारे पांवों को छलनी होने से बचाये ! (**रानी के कंधे पर हाथ रखते हुए**) चलो रानो !

(**चलते हैं ।**)

वृन्दावन : (**ताराचन्द को समझाने के लिए दोनों हाथ बढ़ाते हुए उसकी ओर बढ़ कर**) ताराचन्द !

बृजनाथ : (**पूरन को समझाने के लिए दोनों हाथ बढ़ाते हुए, उसकी ओर बढ़कर**) पूरन !

[**ताराचन्द क्रोध से पागल, राज सहमी, उदयशंकर परेशान, वृन्दावन ताराचन्द को और बृजनाथ पूरन को समझाने के लिए हाथ फैलाये खड़े हैं। रानी के कंधे पर हाथ रखे, पूरन जाने को कदम बढ़ाये है, जब पर्दा गिर जाता है।**]

परिशिष्ट

[रंगमंच के दो व्यावहारिक अनुभव]

प्रायः मैं अपने नाटक रेडियो पर नहीं सुनता। मेरे लगभग सभी नाटक रेडियो के विभिन्न स्टेशनों से ब्रॉडकास्ट हो चुके हैं, पर इनमें से दो चार ही को मैंने सुना है। यही हाल रंगमंच का है। दूसरे नगरों में स्टेज होने वाले एकांकियों को जाकर देखने की (निमंत्रण सदा मिलते रहे हैं) बात तो दूर रही, अपने शहर में होने वाले नाटकों को भी मैं प्रायः नहीं देखता।

मेरी इस वितृष्णा का कारण रेडियो या रंगमंच से मेरी बेदिली नहीं। रेडियो के माध्यम को मैं बड़ा सबल माध्यम मानता हूँ और रंग-मंच का मुझे जैसा शौक है, उसे सभी जानते हैं।

इस अन्यमनस्कता के कारण पर जब विचार करता हूँ तो लगता है कि जैसे मैं डरता हूँ—डरता हूँ कि कहीं खेलने वाले नाटक

का सत्यानास ही न कर दें। ऐसे न खेलें कि उनके अभिनय की अनगढ़ता में उसका मुख्य उद्देश्य ही खत्म हो जाय!

और मुझे शुरू-शुरू की एक घटना याद आती है :

शायद १९३८ की बात है। लाहौर में नया-नया रेडियो स्टेशन खुला था। मैंने कुछ दिन पहले अपना पहला नाटक 'पापी' लिखा था और मुझे वह बड़ा पसन्द था। किसी मित्र के कहने पर मैंने वह रेडियो में भेज दिया। वह स्वीकार हो गया और सबसे बड़ी बात यह हुई कि एक दिन जब मैं स्टेशन पर गया तो मुझे मालूम हुआ, प्रसिद्ध एक्टर हीरालाल उसमें काम कर रहे हैं। हीरालाल चाहे अब एक कैरेक्टर एक्टर हैं, पर तब वे एक फ़िल्म में नायक का रोल कर रहे थे। नाटक के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने के लिए वे मुझसे मिलने आये। साथ उनके एक सुन्दर लड़की भी थी। उन्होंने कहा कि नाटक मुझे बहुत पसन्द है और मैं शान्तिलाल का रोल ऐसे अदा करूँगा कि आपको लुत्फ़ आ जायगा। एक दो डॉयलाग उन्होंने बोलकर भी दिखाये। फिर उन्होंने अपने साथ वाली लड़की की ओर संकेत करते हुए बताया कि 'छाया' की भूमिका में यह काम करेंगी और वे उन्हें ऐसा ट्रेण्ड कर देंगे कि सुनने वाले दंग रह जायंगे। ओठों के आगे हाथ रखकर उन्होंने यक्ष्मा की कृश-काय रोगिनी की खांसी की नकल की। उनके सिखाने पर जब लड़की ने वैसे ही खांसा तो मुझे रोमांच हो आया और मैंने तय कर लिया कि मैं यह नाटक जरूर सुनूंगा।

मैं उस समय जिस वातावरण में रहता था, उसमें अपने यहां तो दूर, किसी मित्र अथवा पड़ोसी के यहां भी रेडियो नहीं था। नाटक की रात मैंने अपने दो-एक मित्रों को साथ लिया और दो मील चल कर शिमला पहाड़ी के पास रेडियो स्टेशन पहुँचा। विज़िटर्ज़ रूम में लाउडस्पीकर दीवार से लगा था, कुर्सियां उसके पास घसीट कर हम

बैठ गये, तभी एलान के बाद छाया की कमज़ोर आवाज़ सुनायी पड़ी और वह खांसी—पहले वाक्य ही ने मन के तार झनझना दिये और उस खांसी ने शरीर को कँपा दिया। हीरालाल ने बड़ा सुन्दर निर्देशन किया था।

हीरालाल की आवाज़ भी बड़ी गहर-गम्भीर और प्रभावशाली थी—ट्रेजेडी के उस अहसास के बावजूद नाटक की सफलता से मन में हल्की सी खुशी का आभास भी था कि एक मोटी भद्दी आवाज़ आयी—"क्या हो रहा है, क्या होने वाला है, मैं तो तीमारदारी करने आयी थी......"

और लगा कि जैसे किसी ने सीने में घूंसा मार दिया। 'पापी' की 'रेखा' तेरह-चौदह बरस की लड़की है। लेकिन आवाज़ से लगता था कि बोलने वाली तीस पैंतीस बरस की है। मोटी और अनपढ़ है। लहजा उसका एकदम पंजाबी था और शब्द 'तुम्हारे' को वह बड़े बेतुकेपन से 'तुमारे, तुमारे' बोलती थी।

उन दिनों ज़रा सी बात मेरी नींद हराम करने के लिए काफ़ी थी। नाटक के इस उलटे छुरे या यों कहा जाय कि मोटी उलटी छुरी से ज़िबह किये जाने से मुझे कितनी तकलीफ़ हुई, इसका अन्दाज़ आप इस बात से कीजिए कि वह कसक अब भी बाकी है। इस बीच रेडियो की अपनी नौकरी के दिनों में मैंने अन्सार नासरी द्वारा 'चिलमन', रफ़ी पीर द्वारा 'सुबह-शाम' (अंजो दीदी) और पिछले दिनों अचानक एस० एस० एस० ठाकुर द्वारा निर्देशित 'जय पराजय' भी सुना है और उनके निर्देशन में मुझे कहीं त्रुटि दिखायी नहीं दी। इतने अच्छे प्रस्तुत होने वाले नाटकों को सुनना बड़ा सुख देता है। पर सुख का यह अहसास पहली असफलता की उस टीस को नहीं मिटा सका और न ही मुझे नाटक सुनने की प्रेरणा दे सका। पहली असफलता का अहसास भी

पहले प्रेम सरीखा है और दिल में न जाने कैसा घाव कर देता है जो कभी नहीं भरता।

रहा स्टेज का नाटक—तो इस बीच में बीसियों जगह मेरे एकांकी खेले गये हैं, पर दो अवसरों को छोड़कर मैं कभी अपना नाटक नहीं देखने गया। यद्यपि अपने नाटक को स्टेज पर वैसे जिबह होते मैंने कभी नहीं देखा, लेकिन नाटक लिखना शुरू करने से बहुत पहले मैंने वह घटना पढ़ी थी, जब प्रसिद्ध रूसी नाटककार चैखव ने अपना पहला नाटक 'सी-गल' (सागर-हंसिनी) देखा था और घोर निराशा में वह हाल से भाग गया था। चैखव की प्रेयसी लिडिया एवीलौव ने अपने संस्मरणों में उसका बड़ा दर्द भरा वर्णन किया है। मुझे उस स्थल पर सदा लगता है कि चैखव नहीं स्वयं मैं ही वहां था, वह नाटक मेरा ही था, जिसे एक्टरों, आलोचकों और प्रति द्वन्द्वी दर्शकों ने कत्ल कर दिया। और चैखव—वह इतना निराश हुआ कि राजयक्ष्मा का शिकार हो गया।

और मैं कभी अपना नाटक देखने नहीं गया। नाटकों के सूक्ष्म (Subtle) भाग साधारण एमेचर अभिनेताओं के बस के नहीं होते और उन्हें जिबह होते देखना अपने ही बच्चों को अपने ही सामने जिबह होते देखने के बराबर है।

लेकिन गत दो-तीन वर्षों में न केवल मुझे अपने नाटक देखने को बाध्य होना पड़ा है, बल्कि उनमें योग भी देना पड़ा है। १९५१ में प्रयाग विश्वविद्यालय के म्योर हॉस्टल की ड्रामेटिक एसोसिएशन ने मेरा नाटक 'छठा बेटा' चुना। वे दो घण्टे का नाटक खेल न सकते थे और काट-छांट कर एक घण्टे का बनाने में बहुत से सम्भाषण काटने पड़ते थे और मुझे खासा बुरा लग रहा था। लेकिन एमेचर-नाटक-आन्दोलन में काट-छांट कर ही सही, नाटकों का खेला जाना मैं जरूरी समझता हूँ। नाटकों का ठीक प्रस्तुतीकरण अभीष्ट है, पर वह तभी होगा जब पहले

नाटक करने और देखने की प्रवृत्ति देश भर में जगेगी। 'शा' के बारे में सुनता हूँ कि वे घण्टों अपने नाटकों की रिहर्सलें कराते थे, कहां किसको खड़ा होना है, कहां से कौन सम्वाद बोलना है, छोटे से छोटे ब्यौरे का वे ध्यान रखते थे। नाटककार की हैसियत से, विशेष कर ऐसे नाटककार की हैसियत से, जिसे रंगमंच ही का नहीं, अभिनय का भी अनुभव है, मैं ऐसा न चाहता होऊँ, यह बात नहीं, पर भारत और इंग्लिस्तान की परिस्थितियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। वहां रंगमंच की परम्परा भारत की तरह एकदम कभी नहीं खोयी। यहां जैसा शून्य वहां कभी नहीं हुआ। फिर वहां एमेचर रंगमंच यहां की अपेक्षा कहीं उन्नत और साधन-सम्पन्न है और लोगों में नाटकों की बड़ी भूख है। यहां के एमेचर मंच पर अभी दो वर्ष पहले तक कोई मौलिक बड़ा हिन्दी नाटक होता ही नहीं था। इसलिए पन्द्रह-बीस मिनट के नाटक के बदले जब म्योर हॉस्टल वाले एक घण्टे का नाटक खेलने को तैयार हो गये तो मैंने मन में सोच लिया कि जब मुझे देखना ही नहीं तो नाटक कैसे जिबह किया जाता है, मैं इसकी क्यों चिन्ता करूँ। सो दीनदयाल का पार्ट एकदम काट दिया गया और भी कुछ दूसरे परिवर्तन किये गये, और मैंने उन्हें नाटक खेलने की इजाज़त भी दे दी।

"आप नाटक देखने जरूर आइएगा," नाटक के निर्देशक श्री सतीशदत्त पाण्डेय ने कहा।

मैंने उनसे अपनी वितृष्णा की बात कही तो बोले, "हमें जब विश्वास हो जायगा कि नाटक अच्छा हो रहा है तभी आपको कष्ट देंगे।"

कुछ ही दिन बाद पाण्डेय फिर आये, साथ में उनके एक और युवक था, "ये हैं मिस्टर आर० पी० जोशी"! उन्होंने परिचय दिया, "हॉस्टल

के बहुत ही अच्छे अभिनेता हैं, इन्हें पण्डित बसन्तलाल का पार्ट दिया गया है। पर उसमें इन्हें कुछ कठिनाई पेश आ रही है।"

"क्या कठिनाई है ?" मैंने पूछा।

"दूसरे दृश्य में जब बसन्तलाल के नाम तीन लाख की लाटरी निकल आती है और वे इसकी सूचना अपनी पत्नी को देते हैं तो हँसी-हँसी में वे रोने कैसे लग जाते हैं ?" जोशी ने कहा।

मैं कुछ क्षण उस युवक की ओर देखता रहा, फिर मैंने पूछा—

"आपने कभी शराब पी है ?"

"जी नहीं !"

"आपके परिवार में किसी ने पी है ?"

"जी नहीं !"

"आपने कभी किसी को खूब पिये देखा है ?"

"जी नहीं !"

"आप कभी ठेके में गये हैं ?"

"जी नहीं !"

"तो भाई आप यह भूमिका किसी और को दीजिए !"

युवक का मुंह उतर गया। उसे 'छठा बेटा' में पण्डित बसन्तलाल की भूमिका बड़ी अच्छी लगती थी और उसे करने को उसका बड़ा मन था।

"आप एक बार करके दिखा दीजिए, फिर मैं कर लूंगा।"

मैं व्यस्त था। झुंझला कर उठा। चपरासी को आवाज देकर मैंने दफ्तर से 'आदिमार्ग' की एक प्रति मँगायी, क्योंकि उसमें छठा बेटा का रंगमंच-संस्करण संकलित है।

"मैं एक नहीं दो बार करके दिखा देता हूं," मैंने कहा, "पर जब तक आप दो-एक बार किसी ठेके में जाकर शराब में धुत्त किसी आदमी को बातें करते; क्षण में हँसते, क्षण में रोते, क्षण में सिर फोड़ने-फोड़वाने

को तैयार और क्षण में गले मिलने को तत्पर नहीं देखते, ध्यान से उसकी भाव-भंगिमाओं का निरीक्षण नहीं करते, आपके लिए पण्डित बसन्तलाल की भूमिका को मंच पर सफलता से उतारना कठिन होगा।"

और मैंने दो-तीन बार पण्डित बन्तलाल का वह सम्वाद करके दिखाया।

जोशी चकित सा देखता रहा, फिर उसने मेरे हाथ से किताब ले ली, "लेकिन आप जो सम्वाद बोल रहे हैं, वे हमारे वाले नाटक से भिन्न हैं?"

"आप उस संस्करण से कर रहे होंगे जो अलग से छपा है।" मैंने कहा।

"जी हां!"

"आप नाटक सफलतापूर्वक करना चाहते हैं तो 'आदिमार्ग' से कीजिए, क्योंकि अलग से जो नाटक छपा है, वह पाठ्यक्रम के लिए तैयार किया गया है, इसलिए उसमें कहीं-कहीं क्लिष्ट शब्द आ गये हैं। फिर 'साले' शब्द काटकर उसकी जगह 'कम्बख्त' कर दिया गया है। हालांकि कम्बख्त कहने में वह बात नहीं पैदा होती। यह गाली वाक्य के अन्त में आती है और शराब में धुत्त होने के कारण पण्डित बसन्तलाल लटके के साथ इसे देते हैं"—और मैंने उन्हें वैसा एक सम्वाद बोलकर दिखाया।

दोनों हँसी के मारे लोट-पोट हो गये।

"चाहे मैं और कुछ कर सकूं या नहीं," जोशी बोला, "पर यह लटका मैं ज़रूर दे दूंगा।"

उन्होंने 'आदिमार्ग' की एक प्रति ले ली। मैंने उन्हें 'नीटा' (नार्थ इण्डियन थियेट्रिकल एसोसिएशन) के डायरेक्टर श्री विजय बोस से मिला दिया। जोशी की कठिनाई उन्हें समझा दी, पार्ट करके दिखाया और उनसे कहा कि नाटक स्टेज करने में उनकी सहायता कर दें।

नाटक वाले दिन नाटक शुरू होने से एक घण्टा पहले जोशी स्वयं आया।

"अश्क जी आप अवश्य चलिए!" उसने अनुरोध किया, "सुबह ड्रेस-रिहर्सल हुई थी और सब का ख़याल है कि नाटक बहुत अच्छा हो रहा है। हमने सम्वाद भी 'आदिमार्ग' के अनुरूप सरल बना लिये हैं। ठेके पर जाने का अवसर तो मैं नहीं पा सका, पर आपने जैसे पार्ट करके दिखाया और बोस साहब ने जैसे बताया, उसे उतारने की मैंने पूरी कोशिश की है।"

मेरा जाने को ज़रा भी मन न था। पर जोशी ने बड़ा अनुरोध किया। कौशल्या चलने को तैयार हो गयी तो मैं भी चल दिया।

लेकिन नाटक देखने के बाद लगा कि अच्छा हुआ, हम देखने आ गये। जोशी की भूमिका यद्यपि मेरे खयाल में ४५ प्रतिशत सफल रही, धुत्त शराबी की चाल में जो लड़खड़ाहट आ जाती है, बाहों और टांगों पर जैसे उसका अधिकार उठ जाता है, वैसा कुछ जोशी के यहां नहीं था। खुशी की बातें करते-करते वह आंसू भी नहीं बहा सका, पर 'साले' जहां जहां भी आया उसने ऐसे लटका देकर कहा कि दर्शक हँसी के मारे लोट-पोट हो गये।

शेष पात्रों में डाक्टर हंसराज, चचा चानन राम, कैलाश और गुरु की भूमिकाओं में सर्व श्री एस० पाण्डेय, एन० पन्त, एम० सारस्वत तथा आर० शंकर बड़े सफल रहे।

चाचा चानन राम का तो मेक-अप देखकर ही हँसी आ जाती थी।

मां और कमला की भूमिका लड़कों ही ने की। मां का अत्यधिक करुण पार्ट ज़रा भी नहीं आया, पर कमला की भूमिका में जिस लड़के ने पार्ट किया, उसने लड़कियों से भी अच्छा किया। जब डाक्टर हंसराज ने दूसरी बार कहा—मैं डाक्टर हूं मेरी पोज़ीशन है तो उसने (उन्होंने

कमला को घूंघट काढ़े वहीं पीढ़े पर बैठी दिखाया था) सव्यंग्य ऐसे "हुँ हुँ" किया कि दर्शक अनायास ठठाकर हँस दिये ।

अन्त को भी उन्होंने ज़रा बदल दिया । 'छठा बेटा' के पहले संस्करण का अन्त यों था—

> [तभी उनकी (पं० बसन्तलाल की) दृष्टि धरती पर गिरे हुए लाटरी के टिकेट पर चली जाती है । वे उसे उठा लेते हैं, उसे आंखों के पास ले जा कर पढ़ते हैं । तभी सब कुछ उनके सामने साफ़ हो जाता है । सिर झुक जाता है और एक दीर्घ-निश्वास उनके ओठों से निकल जाता है ।]

पाण्डेय जी को आपत्ति थी कि जहां तक दर्शकों का सम्बन्ध है, यह अन्त प्रभावोत्पादक नहीं । क्योंकि पिछली पंक्ति में बैठे लोगों को यह दीर्घ-निश्वास और तज्जनित मुख-मुद्रा दिखायी न देगी । सो अन्त यों किया गया ।

> [तभी उनकी दृष्टि धरती पर गिरे हुए लाटरी के टिकेट पर चली जाती है । वे उसे उठा लेते हैं और उसे हाथ में लिये और पढ़ते हुए उठते हैं । तभी सब कुछ उन पर प्रकट हो जाता है । चौंककर वे चिल्ला उठते हैं—"तो क्या यह सपना था"—और फिर चारपाई पर लुढ़क जाते हैं ।]

जोशी ने यह टुकड़ा इतना अच्छा किया कि जब दृश्य पर पर्दा गिरा तो लोग अनायास करतल-ध्वनि कर उठे । अजीब बात यह है कि मैं स्वयं वे सब त्रुटियां भूल गया और बेसाख्ता ताली बजा उठा ।

दो बातों का पता 'छठा बेटा' के उस प्रदर्शन में चला । रंगमंच पर होना यह चाहिए कि जब किसी स्थल पर लोग हँसें तो अभिनेता

क्षण भर को मौन हो जायँ। 'छठा बेटा' में दर्शक इतना हँसेंगे औ नाटक इतना सफल रहेगा, यह न सोचा था। इसलिए अभिनेताअ को खबरदार न किया था। वे इस बात का खयाल नहीं रख सव और बहुत से सम्वाद सुनायी नहीं दिये। सिनेमा के पर्दे पर कभी कभी आवाज़ बन्द हो जाने से जैसे तस्वीरों के ओठ हिलते दिखायी दे हैं, कुछ वैसा ही दृश्य वहां दिखायी दिया। दो साल बाद 'अलग-अलग रास्ते खेलते समय मैंने 'नीटा' के सभी सदस्यों को इस बात से खबरदार क दिया और 'अलग-अलग रास्ते' की सफलता में इस छोटी सी बात क बड़ा हाथ है। राज जोशी और कौशल बिहारीलाल ने दूसरे एक्ट में इ बात का बड़ा खयाल रखा। एक भी सम्वाद नहीं मरने दिया औ हाल लगातार कहकहाज़ार बना रहा।

दूसरी बात जिसका आभास उस रात हुआ, वह थी नृत्य-गान-विही आधुनिक बड़े नाटक की सफलता। आज तक हमारे यहां या त ऐतिहासिक नाटक खेले जाते रहे हैं या नृत्यगान वाले एकांकी या कंसर्ट ! ऐसा लम्बा सामाजिक नाटक भी एमेचर मंच पर सफल हो सकता है जिसमें एक भी नाच या गाना न हो, यह उसी रात मालूम हुआ। जह तक मेरा सम्बन्ध है, यदि ऐसे नाटक की सफलता में मेरा विश्वा न होता तो मैं ऐसा नाटक लिखता ही क्यों, लेकिन अपनी आंखों व सामने उसे सफल होते देखकर, लोगों को बात-बात पर ताली बजा देखकर मेरा विश्वास और भी पक्का ज़रूर हुआ। यद्यपि मेरे विचा से नाटक केवल ४५ प्रतिशत सफल हुआ, लेकिन यह तो मालूम हो गय कि यह कितना अच्छा हो सकता है और कैसे दर्शकों को हँसा-रुल सकता है।

मुझसे अधिक उसका प्रभाव श्री विजय बोस पर हुआ और जब मैं १९५३ के अपने मसूरी प्रवास में 'अलग-अलग रास्ते' की अन्तिम

पाण्डुलिपि तैयार की और आ कर उन्हें दिखायी तो उन्होंने तय किया कि 'नीटा' की ओर से अगला नाटक वे एकांकी न करके बड़ा करेंगे, 'अलग-अलग रास्ते' करेंगे और पैलेस थियेटर में करेंगे।

'नीटा' इलाहाबाद के निम्न-मध्य-वर्गीय आर्टिस्टों की संस्था है, जिसमें बड़े अच्छे अभिनेता हैं, पर सब के-सब साधन-हीन हैं। १९५१ में मेरे ही यहां रेडियो स्टेशन इलाहाबाद, अग्रसेन हाई स्कूल तथा एकाउण्टेण्ट जनरल के दफ्तर के चन्द कलाकारों की उपस्थिति में इसका सूत्रपात हुआ। पहले-पहल 'नीटा' ने मेरा ही एकांकी 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' खेला, फिर एक साल बाद मेरा ही दूसरा एकांकी 'मस्केबाजों का स्वर्ग' खेला। फिर श्री भगवती चरण वर्मा के 'दो कलाकार' और 'सब से' बड़ा आदमी खेले। इस बीच 'नीटा' के आर्टिस्ट दूसरी संस्थाओं में योग देकर न केवल उनके नाटक सफल बनाते रहे, बल्कि स्वयं भी बड़ा कीमती अनुभव प्राप्त करते रहे।

'नीटा' के लिए 'अलग-अलग रास्ते' के चुने जाने में प्रसिद्ध हिन्दी-कवि श्री भारतभूषण अग्रवाल का भी हाथ है। उन्हें मेरा नाटक 'आदिमार्ग' बड़ा पसन्द था। वे जब लखनऊ में थे तो वे 'आदिमार्ग' स्टेज करना चाहते थे। लेकिन जब सब तैयारी लगभग पूरी हो गयी तो उनका तबादला इलाहाबाद हो गया।

यहां आने पर जब उन्हें श्री विजय बोस से मालूम हुआ कि मैंने 'आदिमार्ग' को फिर से लिखा है और उसे तीन एक्ट का बना दिया है तो वे बड़े प्रसन्न हुए। 'नीटा' की एक मीटिंग रखी गयी, वहां 'अलग-अलग रास्ते' पढ़ा गया और यही नाटक किया जाय, यह तय हुआ।

लेकिन तब मैं संकोच में पड़ गया। 'पैलेस थियेटर' इलाहाबाद का प्रसिद्ध थियेटर है, उसमें नाटक सफल हो जाय तो क्या बात है, पर

यदि असफल रहे तो सिविल लाइन्स में निकलना मुश्किल हो जाय। 'बैंखव' के 'सी-गल' के प्रथम अभिनय की बात मेरी आंखों में घूम गयी।

जब मैंने अपनी शंका प्रकट की तो श्री अग्रवाल और विजय बोस दोनों ने कहा कि यदि नाटक रिहर्सल में आपको अच्छा न लगे तो न किया जायगा। और मै आश्वस्त हो गया।

'अलग-अलग रास्ते' वास्तव में 'आदिमार्ग' ही का परिवर्तित रूप है। हुआ यह कि 'छठा बेटा' के बाद मै इसी थीम पर उतना ही बड़ा नाटक लिखना चाहता था। यदि मैं रेडियो में* नौकर न होता तो निश्चय ही मै तीन एक्ट का नाटक लिखता पर तब मुझे हर दूसरे महीने एक न एक नाटक रेडियो के लिए लिखना पड़ता था। रेडियो में दो घंटे का नाटक हो न सकता था। जिन दिनों मैं रेडियो में नौकर हुआ बड़े से बड़ा नाटक आध घण्टे का हो सकता था। लेकिन १९४३ में इण्टर-स्टेशन-प्ले होने लगे, अर्थात् एक नाटक सभी स्टेशनों से ब्रॉडकास्ट होता था— कभी सजीव और कभी रेकार्ड होकर! इण्टर-स्टेशन-प्ले होने लगे तो स्पर्धा भी जगी और अच्छे नाटकों की मांग भी बढ़ी। अवधि भी आधे घण्टे से बढ़कर ४५ मिनट हो गयी। तब मेरे दिमाग में 'अंजो दीदी' और 'अलग-अलग रास्ते' के आधारभूत विचार थे। पहले मैंने 'अंजो दीदी' लिखना शुरू किया। एक एक्ट लिखकर मैंने रेडियो के ड्रामा इंचार्ज को दे दिया। उन्हें वह इतना अच्छा लगा कि उस एक ऐक्ट ही को पूरे एकांकी के रूप में ब्रॉडकास्ट करना उन्होंने स्वीकार कर लिया। रफ़ी पीर ने उसे प्रस्तुत किया और इतना अच्छा प्रस्तुतीकरण रेडियो पर मैंने कभी नहीं देखा। 'अलग-अलग रास्ते' को मैंने किसी न किसी तरह ४५

---

* अश्क जी १९४१ से ४४ तक आल इंडिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन से नाटककार के रूप में सम्बद्ध थे।

मिनट की अवधि में समो दिया और यह 'आदिमार्ग' के नाम से कई बार ब्रॉडकास्ट हुआ।

यद्यपि 'अंजो दीदी' और 'अलग-अलग रास्ते' अपने एकांकी रूप में स्टेज पर भी बड़े सफल रहे। लेकिन मैं सन्तुष्ट न हुआ। 'अंजो दीदी' चाहे लोगों को बिल्कुल पूरा लगता था, लेकिन मुझे एकदम अपूर्ण दिखायी देता था। अब उसके पूर्ण रूप में उसे जो लोग पढ़ेंगे वे मेरे असन्तोष को समझ जायँगे।

'अंजो दीदी' में तो खैर सिवा इसके कि एक और एक्ट लिखना शेष था, मुझे कोई त्रुटि न लगती थी, पर 'अलग-अलग रास्ते', 'आदिमार्ग' के रूप में बड़ा ही त्रुटिपूर्ण मालूम होता था।

पहले तो यह कि ताराचन्द जब अपने जमाई प्रोफेसर मदन को दूसरी शादी करने से रोकने जाते हैं तो दस ही मिनट बाद वापस आ जाते हैं। रंगमंच लाख भ्रम (Illusion) सही पर उनका इतनी जल्दी आ जाना समझने वालों को खटकता है। और सत्य का भ्रम नहीं होने देता। दस मिनट में, कार ही में सही, कैसे पं० ताराचन्द खाई वालों की धर्मशाला में पहुँच गये और कैसे (शादी हो ही चुकी सही) उनसे लड़-झगड़ कर वापस भी आ गये ?—यह बात अनायास मन में उठती है।

दूसरे पूरन और रानी का चरित्र उसमें अपूर्ण दिखायी देता है। रानी पर अपने भाई का प्रभाव है, पर वह भाई कैसा है, जिसकी शिक्षा बहन को पति और पिता—दोनों को छोड़कर चले जाने के लिए उद्यत कर देती है, उस भाई का मानसिक स्तर कैसा है, इस सब का पता 'आदिमार्ग' से नहीं चलता। पूरन के एक दो व्यंग्य-वाक्य और मार्क्स और लेनिन की तस्वीरें हैं, लेकिन वे सब पूरन के चरित्र की महत्ता बता सकने में नितान्त कम पड़ जाती हैं।

तीसरे ताराचन्द का चरित्र भी जैसा मैं चाहता था 'आदिमार्ग' में नहीं उतर पाया। ताराचन्द को मैं एक कठोर पिता के रूप में देखता था। पर 'आदिमार्ग' का ताराचन्द, लिजलिजा, ढुलमुल किंचित हास्यास्पद और रूढ़िग्रस्त उतरा।

'आदिमार्ग' को 'अलग-अलग रास्ते' के रूप में आने तक १० बरस लग गये। मैं बेशुमार उलझनों में फँसा रहा, उपन्यास और कहानियां लिखता रहा, लेकिन इच्छा रहने पर भी इन नाटकों को पूरा नहीं कर सका।

इधर १९५१ में 'नीटा' के संस्थापन के बाद लगातार इन्हें पूरा करने की बात मन में आती रही, पर 'छठा बेटा' की सफलता ने कुछ ऐसा प्रोत्साहित किया कि १९५२ में मैंने उसे खत्म कर डाला।

जिन दिनों 'अलग-अलग रास्ते' की रिहर्सल हो रही थी, मैं अपना उपन्यास 'बड़ी-बड़ी आंखें' लिख रहा था। रिहर्सलें श्री विजय बोस और श्री भारत भूषण अग्रवाल ने करवायीं। भारत भूषण नाटक के दस-पन्द्रह दिन पहले बीमार हो गये तो सारा बोझ श्री विजय बोस पर आ पड़ा। क्योंकि यह पहले से तय था कि नाटक अच्छा न होगा तो स्टेज न किया जायगा, इसलिए अन्तिम कुछ रिहर्सल मेरे यहां हुईं। और तो सब ठीक हो रहा था, लेकिन स्टेज पर कौन कहां होगा, यह ठीक न था, अन्तिम दृश्य में खासी भीड़ जमा हो जाती थी। वह सब इन अन्तिम रिहर्सलों में नियत किया गया और यद्यपि मैं पूर्णरूपेण सन्तुष्ट न हुआ तो भी नाटक खेल लिया जाय, इसकी अनुमति मैंने दे दी। स्वयं भी नाटक के दिन स्टेज पर उपस्थित रहा।

नाटक हमारी सब की आशाओं से कहीं ज्यादा सफल हुआ। ताराचन्द की भूमिका में विजय-बोस, पूरन के रूप में राज जोशी, त्रिलोक की भूमिका में कौशल बिहारी लाल, सन्नू के रूप में ताराचन्द गौड़

बड़े ही सफल उतरे। के० बी० लाल, पी० सी बनर्जी और अब्बास ने भी नाराचन्द के मित्रों की भूमिका को खूब निबाहा। रानी की भूमिका में ललिता चटर्जी ने बड़ा सुन्दर अभिनय किया। श्रीमती बिन्दु अग्रवाल राजी की भूमिका में उतरीं। वे इसलिए भी प्रशंसा की पात्र हैं कि उन दिनों उनके पति श्री अग्रवाल सख्त बीमार थे, वे अस्पताल जाती थीं, रिहर्सल करती थीं, अपनी बच्चियों को देखती थीं और अपना पार्ट उन्हें शब्दशः याद था। रंगमंच के लिए ऐसी निष्ठा अलभ्य है। नाटक समाप्त हुआ तो दर्शक हाल के बाहर नहीं जा रहे थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे हम लोगों का दिल बहुत बढ़ा। नटक के बाद ही सब अभिनेता मेरे घर चाय पर आये और गयी रात तक इस सफलता के नशे में सरशार रहे।

अब इतने दिन बाद जो उस शाम की याद करता हूँ तो लगता है कि 'अलग-अलग रास्ते' की सफलता चमत्कार से कम न थी। मन के मुताबिक केवल दो रिहर्सलें हुईं। ड्रेस रिहर्सल एक भी नहीं हुई। पैलेस के स्क्रीन पर रोगन हो रहा था, इसलिए स्टेज पर जगह नहीं मिली। आधी रिहर्सलें स्टेज पर और आधी पैलेस के बरामदों में हुईं। क्योंकि सेटिंग का कुछ आभास अभिनेताओं को देना ज़रूरी था, इसलिए पैलेस के स्टेज को नाप कर मैंने अपने काटेज (Cottage) के आगे चाक से स्टेज बनाया और उस में अभिनेताओं की गतिविधि को निश्चित किया।

पैलेस वालों ने हमको मैटनी के लिए हाल दिया था और हमको हाल छै बजे खाली कर देना था। डा० रूबी मुकर्जी (यद्यपि वे नीटा की सदस्य नहीं, पर हमारी प्रार्थना पर) स्टेज सेट करने में हमारी मदद कर रहीं थीं। चार बज गये जब सेटिंग खत्म हुई तो उन्होंने आदेश दिया कि लाइट्स ऑन की जायें। तब मालूम हुआ कि बल्ब तो हैं ही नहीं। विजय बोस चिल्ला रहे हैं कि तत्काल नाटक शुरू होना चाहिए और डाक्टर रूबी चिल्ला रही हैं कि बल्बों का इन्तज़ाम करो। जिन

महानुभाव के जिम्मे यह ड्यूटी लगायी गयी थी, वे पता नहीं क गायब थे। तब डाक्टर रूबी ने खुद अपनी जेब से पैसा खर्च कर पता नहीं कहां से, बल्ब मँगाये। यह तय है कि वे ऐन वक्त प हमारी मदद न करतीं तो हमारा नाटक, सफल होना तो दूर, शुरू ही हो पाता।

नाटक का पहला दृश्य जोरों से हो रहा था कि पर्दे पर तैना व्यक्ति ने मुझसे कहा, "मुझे बता दीजिएगा कि मुझे पर्दा क गिराना है ?" मैं चकराया। यों ही तमाशा देखने के लिए गया था, क ड्यूटी मेरे जिम्मे नहीं थी। लेकिन मेरा नाटक...सफलत असफलता में मैं साझे का भागी... भागा-भागा ग्रीन-रूम में गया. कहीं से ढूंढ़-ढांढ़ कर नाटक की एक प्रतिलिपि लाया और पर्दे वाले पास आ खड़ा हुआ, तभी प्रॉम्पटर ने कहा, "काल बेल बजाइए", "का बेल बजाइए।" अब मालूम हुआ कि काल बेल पर कोई आदमी नियु ही नहीं। खेल के अन्त तक ये दोनों कर्तव्य मैं सरंजाम देता रहा

अभी खेल कुछ ही बढ़ा था कि पर्दे वाला, "सम्हालिए अपने प मैं चला !" कहता हुआ बाहर की ओर बढ़ा। मेरे पांव तले से धर खिसक गयी। बढ़कर मैंने उसे रोका। मालूम हुआ कि उसके दो आ मियों को पास नहीं दिये गये हैं। तब 'नीटा' का जो भी मेम्बर साम पड़ा, उसे डांट कर मैंने कहा 'इसके आदमियों को बुला कर फ़र्स्ट क्ला में बैठा दो !'......यह नखरा उसका तब था जब कि पर्दा उठाने औ गिराने के लिये उसे पैसे देकर बुलाया गया था।

जहां तक अभिनय का सम्बन्ध है, एक दो बातें उल्लेखनीय हैं—

श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने अपने एकांकी संग्रह की भूमिका में नाट खेलने वालों को जो परामर्श दिये हैं, उनमें सबसे पहला है—क्या आप पात्रों को अपना-अपना पार्ट याद है या वे प्रॉम्पटर के आसरे का

चलाते हैं.....'अलग-अलग रास्ते' में कुछ लोग ऐसे थे, जिन्हें अपना पार्ट याद नहीं था और वे प्रॉम्पटर का मुंह तकते थे। इन्हीं की बदौलत अन्त का एक बड़ा महत्वपूर्ण सम्वाद कट गया। हालांकि दर्शकों को कुछ मालूम नहीं हुआ पर लेखक के कलेजे पर छुरी चल गयी। दूसरी ओर कौशल बिहारी लाल और राज जोशी को पार्ट अच्छी तरह याद होने से, उन्होंने दूसरा ऐक्ट इतना अच्छा किया कि वह नाटक को उठा कर सफलता के शिखर पर ले गया। दूसरे एक्ट में पूरन और त्रिलोक लगभग आध घंटे तक स्टेज पर रहते हैं। नाटक खत्म करके मैंने मित्रों को सुनाया था तो उन्होंने कहा था—सम्वाद कितने भी दिलचस्प क्यों न हों पर यह बोर करेगा। लेकिन राज जोशी और कौशल बिहारी लाल के सुन्दर एक्टिंग के कारण दर्शक हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

'छठा बेटा' के अभिनेताओं को यह मालूम न था कि लोग हँसें तो चुप हो जाना चाहिए। इसलिए कुछ बड़े सुन्दर संवाद मर गये। लेकिन 'अलग-अलग रास्ते' के इस दूसरे एक्ट में एक अन्य कारण से एक बहुत ही अच्छा संवाद खत्म हो गया और इस बात का मुझे दुख रहा।

दर्शकों की एक दूसरी प्रवृत्ति भी होती है। वे यदि किसी अभिनेता की एक आध भाव-भंगिमा या संवाद पर हँसते हैं तो फिर उसकी हर अदा पर लगातार हँसते चले जाते हैं, चाहे संवादों में हँसी की गुंजाइश हो या न हो। जिस प्रकार फिल्म के पर्दे पर हास्य रस के प्रसिद्ध अभिनेता वी० एच० देसाई की सूरत देख कर ही लोग हँसने लग जाते थे, इसी तरह थियेटर के दर्शक अपने प्रिय अभिनेता की हर अदा पर ठहाके लगाने लगते हैं। 'अलग-अलग रास्ते' में पूरन का पार्ट राज जोशी ने इतनी अच्छी तरह अदा किया कि दर्शक उसकी हर बात पर हँसने लगे। दूसरे एक्ट के अन्त में रानी का बड़ा ही करुण संवाद है, जहां वह अपने पति द्वारा कचहरी के फ्लैट की बात सुनकर दिवा-स्वप्न में

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No